गुण रत्नाकर

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

-:संपादक:-

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशक:

डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला

फिरोजाबाद उ०प्र०

कृतिः

गुण रत्नाकर

कृतिकारः

आचार्य समन्त भद्रास्वामी

शुभाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. जैनाचार्य

श्री १०८ विद्यानंद जी महाराज

संपादकः

एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः

संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

प्रथम संस्करणः **अक्टूबर २०१०**

३००० प्रतियाँ

मूल्यः **२० रुपये**

प्रकाशकः

डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद उ.प्र.

मुद्रकः

जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज'' मो० 9058017645

प्राप्ति स्थानः

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय

रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा

फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

।।नमः श्रीसमन्तभद्राय।।

मंगलाचरण

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्यादर्पणायते।।1।।

अन्वयार्थः- यद्विद्या- जिनका ज्ञान, सालोकानाम्-अलोकाकाश सहित, त्रिलोकानाम्- ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक तीनों लोकों को, दर्पणायते- दर्पण के समान निर्मल जानता है, उस, निर्धूतकलिलात्मने- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मस्वरूप मल को धो डालने वाले अर्थात् कर्मनाश करने वाले, श्रीवर्द्धमानाय- अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्धमान स्वामी को, नमः-नमस्कार हो।।१।।

भावार्थः- श्रीवर्द्धमान शब्द का अभिप्राय अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर आदि चौबीस तीर्थंकरों से भी है। क्योंकि समवशरणादि रूप बहिरंग लक्ष्मी तथा अनन्तदर्शनादि चतुष्टय रूप अन्तरंग लक्ष्मी प्राप्त करने वाले को "श्रीवर्द्धमान" कहते हैं। इसलिये २४वें भगवान के समान शेष २३ तीर्थंकरों के लिये भी यहाँ नमस्कार समझना चाहिये। रूढ़ि और व्युत्पत्ति दोनों अर्थों से "श्रीवर्धमान" यह सिद्ध और सुसंगत होता है।।१।।

धर्मोपदेश करने की प्रतिज्ञा

देशयामिसमीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।2।।

अन्वयार्थ- यः- जो, सत्वान्- प्राणियों को, संसारदुःखतः- चतुर्गति भ्रमण रूप- संसार के दुःखों से उद्धार कर, उत्तमे सुखे- स्वर्गादि से उत्पन्न होने वाले उत्तम सुख में, धरति- रखता है, उस, कर्मनिबर्हणम्- संसार के दुःखों में भ्रमण कराने वाले कर्मों का नाश करने वाले, समीचीनम्- बाधारहित इस लोक, परलोक में उपकारक, धर्मम्- धर्म को, देशयामि- कहता हूँ।।२।।

धर्म का स्वरूप

सद्दृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः।।3।।

अन्वयार्थः- धर्मेश्वराः- रत्नत्रय स्वरूप धर्म के स्वामी जिनेन्द्र भगवान, सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि- सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि को, धर्मं- धर्म, विदुः कहते हैं और यदीयप्रत्यनीकानि- इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र भवपद्धतिः- संसार के मार्ग रूप, भवन्ति होते हैं।

सारांश- सम्यग्दर्शनादि से स्वर्गादि और मिथ्यादर्शनादि से नरकादि की प्राप्ति होती है

तथा क्रम से इन्हें ही धर्म और अधर्म कहते हैं।।३।।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन मस्मयम्।।4।।

अन्वायार्थः- परमार्थानाम्- सत्य परमार्थ भूत सप्त तत्त्वों का, आप्तागम तपोभृताम्- देव, शास्त्र और गुरुओं का, अष्टांगम्- निःशंक्तिादि अष्टगुण सहित, त्रिमूढ़ापोढम्- तीन मूढ़तारहित, अस्मयम् ज्ञानादि अष्टमद रहित, श्रद्धानम् रुचि- श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शनम्- सम्यग्दर्शन है।।४।।

सर्वज्ञ आप्त का स्वरूप

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।।5।।

अन्वयार्थः- नियोगेन- निश्चय से, उच्छिन्नदोषेण अठारह दोष रहित वीतराग, सर्वज्ञेन- सर्वज्ञ और आगमेशिना-हेयोपादेय का विश्वास उत्पन्न कराने वाले शास्त्र का प्रतिपादक, आप्तेन- आप्त, भवितव्यम् होना चाहिये, हि- क्योंकि, अन्यथा इससे विपरीत प्रकार अर्थात् १८ दोष रहित बिना, आप्तता- सत्य आप्तता, न भवेत- नहीं हो सकती।।५।।

वीतराग आप्त का स्वरूप

क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।।6।।

अन्वयार्थः- यस्य- जिस देव के, क्षुत्पिपासाजरातंक जन्मान्तकभयस्मयाः- क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म- मरण, भय, मद, रागद्वेष मोहाः- राग द्वेष और मोह, च- और चिन्ता, अरति, निद्रा, आश्चर्य, विषाद, श्वेद और खेद ये अठारह दोष न- नहीं होते हैं, स आप्तः- वह आप्त, प्रकीर्त्यते- कहा जाता है।।६।।

हितोपदेशी आप्त का स्वरूप

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते।।7।।

अन्वयार्थ- परमेष्ठीः- इन्द्रादि द्वारा वन्दनीय परम पद में स्थित, परंज्योति- कर्मप्रकृति, रूप मल रहित, कृति- सम्पूर्ण हेय तथा उपादेय तत्त्व का ज्ञानी, सर्वज्ञः- समस्त पदार्थों का यथार्थ ज्ञाता, अनादिमध्यान्तः- उक्त आप्त के प्रवाह की अपेक्षा आदि मध्य और अन्त रहित, सार्वः- सबके हित के लिये इस लोक और परलोक के उपकार मार्ग का व्याख्यान करने वाला, शास्ता- पूर्वापर विरोधादि दोष रहित समस्त पदार्थों का यर्थाथ स्वरूप का वक्ता हितोपदेशी, उपलाल्यते- कहा जाता है।।७।।

आप्त कैसे उपदेश करता है?

अनात्मार्थं बिना रागैः शास्ता शास्ति सतोहितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते।।8।।

अन्वयार्थ- शास्ता- हितोपदेशी, अनात्मार्थम्- अपना प्रयोजन रहित, रागैः बिना- लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि की इच्छा बिना, सतः हितम्- भव्यों को स्वर्गादि तथा सम्यग्दर्शन आदि के कारणभूत हित का, शास्ति- उपदेश करता है। क्योंकि शिल्पिकरस्पर्शात्- बजाने वाले के हाथ लगाने से, ध्वनन्- बजाता हुआ, मुरजः- मृदंग, किमपेक्षते- क्या अपेक्षा करता है?

सार यह है कि जैसे मृदंग स्वार्थ रहित विचित्र स्वर करता है, इसी प्रकार सर्वज्ञदेव भी निरपेक्ष होकर शास्त्र का उपदेश करते हैं।।८।।

शास्त्र का उपदेश

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्।।9।।

अन्वयार्थ- आप्तोपज्ञम्- सर्वज्ञ का कहा हुआ हो, अनुल्लंघ्यम्- वादी प्रतिवादियों द्वारा खण्डन न हो, अदृष्टेष्ट विरोधकम्- प्रत्यक्ष और अनुमान से विरोध न हो, तत्त्वोपदेशकृत्- जीवादि सात तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप का कथन करने वाला, सार्वम्- समस्त प्राणियों के लिये हितकारक और कापथघट्टनम- मिथ्यादर्शनादि कुमार्ग का खण्डन करने वाला, शास्त्रम्- शास्त्र कहा जाता है।।९।।

तपस्वी- गुरु का लक्षण

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।।10।।

अन्वयार्थ- यः- जो, विषयाशावशातीतः- स्त्री आदि विषयों की आकांक्षा की अधीनता से रहित है, निरारम्भः- कृषि आदि व्यापार रहित है, अपरिग्रहः- बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह रहित है, ज्ञानध्यानतपोरक्तः- ज्ञान, ध्यान और तप रूपी रत्नों का धारक है, सः- वह, तपस्वी- गुरु, प्रशस्यते- प्रशंसनीय है।।१०।।

1-निःशंकित अंग का स्वरूप

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः।।11।।

अन्वयार्थ- तत्त्वं- तत्त्व, इदम एव- यही है, ईदृशम् एवं- उक्त लक्षण स्वरूप ही है, अन्यत् न- और नहीं है, **च अन्यथा न-** और दूसरी प्रकार नहीं हैं, इति- इस प्रकार, सन्मार्ग- संसार समुद्र से पार होने के लिये सच्चे देव शास्त्र गुरु स्वरूप प्रवाह मार्ग में, आयसाम्भोवत्- तलवार के पानी के समान, अकम्पा- निश्चल रुचि, सम्यग्दर्शन का, असंशया- निःशंकित अंग है।११।।

2- निःकांक्षित अंग का स्वरूप

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता॥12॥

अन्वयार्थ- कर्मपरवशे- कर्मों के आधीन, सान्ते- अन्त सहित, दुःखैः अन्तरितोदये- मानसिक और शारीरिक दुःखों से मिश्रित तथा फल रूप, पाप बीजे- पाप की उत्पत्ति में कारणभूत, सुखे- विषय जन्य सुख में, अनास्था- अविश्वस्त रूप से, श्रद्धान- श्रद्धान करना, अनाकाङ क्षणा- निःष्कांक्षित अंग, स्मृता- माना गया है।।१२।।

3- निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूपं

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता॥13॥

अन्वयार्थ- स्वभावतः- स्वभाव से, अशुचौ- अपवित्र किन्तु, रत्नत्रय पवित्रिते- सम्यग्दर्शनादि से पवित्र, काये- शरीर में, निर्जुगुप्सागुणप्रीतिः- ग्लानि रहित रत्नत्रय के आधारभूत मुक्ति के साधक स्वरूप गुण द्वारा मनुष्य शरीर ही मोक्ष का साधक है, ऐसी प्रीति करना, निर्विचिकित्सिता मता- निर्विचिकित्सा अंग माना गया है।।१३।।

4- अमूढ़दृष्टि अंग का स्वरूप

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ा दृष्टिरुच्यते॥14॥

अन्वयार्थ- दुःखानां पथि- दुःखों के मार्गभूत, कापथे- मिथ्यादर्शनादि कुमार्ग में और, कापथस्थे अपि- मिथ्यादर्शनादिधारक जीव में भी, असम्मतिः- मन से सम्मति न देना, असंपृक्तिः- काय से प्रशंसा न करना और अनुत्कीर्तिः- कीर्तन कर वचन से प्रशंसा न करना, अमूढ़ा दृष्टिः- अमूढ़दृष्टि अंग, उच्यते- कहा जाता है।।१४।।

भावार्थः- मन, वचन और काय से मिथ्या मार्ग और मिथ्यामार्गानुयायियों से सहमत न होना अमूढ़दृष्टि अंग है।

5- उपगूहन अंग का स्वरूप

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम्॥15॥

अन्वयार्थ- गणधरादि देव, स्वयं- स्वभाव से, शुद्धस्य मार्गस्य- निर्मल रत्नत्रय स्वरूप मार्ग के, बालाशक्तजनाश्रयाम्- अज्ञान अशक्ति आदि कारण से उत्पन्न, वाच्यतां- दोष का, यत प्रमार्जन्ति- जो निराकरण करते हैं, तत- उसको उपगूहनम्- उपगूहन

अंग, वदन्ति- कहते हैं।।१५।।

6- स्थितिकरण अंग का स्वरूप

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते।।16।।

अन्वयार्थ- दर्शनात्- सम्यग्दर्शन, वा- अथवा, चरणात् अपि- सम्यक् चारित्र से भी चलतां- विचलितों को, धर्मवत्सलैः- धर्म वत्सलों से, प्रत्यवस्थापनम्- दर्शनादि में फिर से स्थापित करा देना, प्राज्ञैः- बुद्धिमानों द्वारा, स्थितिकरणम्- स्थितिकरण अंग, उच्यते- कहा जाता है।।१६।।

7-वात्सल्य अंग का स्वरूप

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते।।17।।

अन्वयार्थ- स्वयूथ्यान्प्रति- सहधर्मियों के प्रति, सद्भावसनाथा- सरल परिणाम सहित तथा, अपेतकैतवा- माया रहित, यथायोग्यम्- अंजलि देना, सन्मुख जाना, प्रशंसा वचन, उपकरण देना आदि यथायोग्य, प्रतिपत्तिः- पूजा प्रशंसा आदि करना, वात्सल्यम्- वात्सल्य अंग, अभिलप्यते- कहा जाता है।।१७।।

8- प्रभावना अंग का स्वरूप

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशःस्यात्प्रभावना।।18।।

अन्वयार्थ- अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्- जिनमत के सिवाय जो स्नान दानादि विषय में अज्ञानान्धकार के प्रसार का, यथायथम्- स्नान, पूजन, दान, मन्त्र, तन्त्र आदि के विषय में यथाशक्ति, अपाकृत्य- निराकरण कर, जिनशासन माहात्म्यप्रकाशः- जैन धर्म के महत्व का प्रकाश करना, प्रभावना- प्रभावना अंग, स्यात्- है।।१८।।

प्रत्येक अंग में प्रसिद्धि पाने वालों के नाम

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतीः स्मृता।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता।।19।।
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ।।20।।

अन्वयार्थ- तावत् अंगे- प्रथम निःशंकित अंग में, अंचनचौरः- अंजन चोर, ततः अनन्तमती- दूसरे निःकांक्षित अंग में सेठ की पुत्री अनन्तमती, स्मृता- स्मरण की गयी, तृतीये- निर्विचिकित्सित अंग में उद्दायन- उद्दायन नामक राजा, अपि- और तुरीये- चौथे अमूढ़दृष्टि अंग में, रेवती- रेवती रानी, मता- मानी गई है।।१९।।

अन्वयार्थ- ततः- पाँचवें उपगूहन अंग में, जिनेन्द्रभक्तः- जिनेन्द्रभक्त नामक सेठ, ततः परः अन्यः- अगले छठे निर्विचिकित्सित अंग में; वारिषेणः- वारिषेण

नामक श्रेणिक राजा का पुत्र, च- और, शेषयोः- शेष सातवें वात्सल्य अंग और आठवें प्रभावना अंग में क्रम से, विष्णुः- श्री विष्णुकुमार मुनि, च- और वज्रनामा- वज्रकुमार मुनि, लक्ष्यतां गतौ- प्रसिद्ध हुये हैं।।२०।।

सम्यक्त्व के अष्टांग का प्ररूपण करने का क्या प्रयोजन है?

नांगहीन मलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्।
नहि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनाम्।।21।।

अन्वयार्थः- अंगहीनं- निःशंकित आदि किसी एक भी अंग के कम रहने पर, दर्शनम्- सम्यग्दर्शन, जन्मसन्ततिम्- संसार परिपाटी को, छेत्तुम्- नाश करने के लिये, अलं न- समर्थ नहीं है, हि- क्योंकि, अक्षरन्यूनः- अक्षर हीन, मन्त्र- मन्त्र, विषवेदनाम्- विष की पीड़ा को, न निहन्ति- नाश नहीं करता है। इसलिये संसार का नाश करने में अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन ही समर्थ है।।२१।।

लोकमूढ़ता का स्वरूप

आपगासागरस्नानमुच्यः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते।।22।।

अन्वयार्थ- आपगासागरस्नानम्- नदी तथा सागर में कल्याण साधने के अभिप्राय से स्नान करना, सिकताश्मनां- बालू और पत्थरों का, उच्चयः- ढेर लगाना, च- और, अग्निपात- अग्नि में प्रवेश करना, लोकमूढं- लोकमूढ़ता, निगद्यते- कही जाती है।।२२।।

देवमूढ़ता का स्वरूप

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत, देवतामूढ़मुच्यते।।23।।

अन्वयार्थ- आशावान्- ऐहिक सुख की आशा करता हुआ, वरोपलिप्सया- वांछित फल के प्राप्त करने की इच्छा से, रागद्वेष मलीमसाः- रागद्वेष से मलिन, देवताः- देवताओं की, यत्- जो, उपासीत- उपासना करना है वह, देवतामूढं- देव मूढ़ता, उच्यते- कही जाती है।।२३।।

गुरु मूढ़ता का स्वरूप

सग्रन्थारम्भहिंसानां, संसारावर्त्तवर्तनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो, ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम्।।24।।

अन्वयार्थ- सग्रन्थारम्भहिंसानाम्- दासीदास आदि परिग्रह और कृषि आदि अनेक प्रकार प्राणीहिंसा करने वाले और, संसारावर्त्तवर्तनाम्- संसार में परिभ्रमण कराने वाले विवाद आदि कराने में लीन, पाखण्डिनाम्- मिथ्यादृष्टियों की, पुरस्कारः- प्रशंसा करना, पाखण्डिमोहनम्- पाखण्डिमूढ़ता, ज्ञेयम्- जाननी

चाहिये।।२४।।

मद के भेद

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः।।25।।

अन्वयार्थ- गतस्मयाः- मदरहित जिन भगवान, ज्ञानं- ज्ञान, पूजां- पूजा, कुलं- कुल, जातिं- जाति, बलं- बल, ऋद्धिं- ऋद्धि, तपः- तप, वपुः- शरीर इन, अष्टौ आश्रित्य- आठों का आश्रय लेकर, मानित्वं- मान करने को, स्मयं- मद, आहुः- कहते हैं।।२५।।

मद करने से हानि

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना।।26।।

अन्वयार्थ- यः- जो पुरुष, गर्विताशयः- गर्व करता हुआ, स्मयेन- मद से, अन्यान्- दूसरे, धर्मस्थान्- रत्नत्रय सहित पुरुषों का, अत्येति- अनादर करता है, सः- वह, आत्मीयम्- जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत, धर्मम्- रत्नत्रय धर्म का, अत्येति- अनादर करता है, यतः- क्योंकि, धर्मः- धर्म, धार्मिकैः- रत्नत्रय धारियों के, विना न- बिना नहीं होता।।२६।।

कुलीन, मद का कैसे त्याग करें?

यदि पापनिरोधोऽन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्।।27।।

अन्वयार्थ- यदि- अगर, पापनिरोधः- ज्ञानावरणादि अशुभ कर्म रूप का निरोध हो गया है अर्थात् रत्नत्रय का सद्भाव है तो, अन्य सम्पदा- दूसरे कुलीनता आदि से, किम् प्रयोजनम्- क्या प्रयोजन है अर्थात् रत्नत्रय से उत्कृष्ट कोई सम्पत्ति नहीं होती, अथ- और, पापास्रवः अस्ति- मिथ्यात्व विरत आदि अशुभ कर्म रूप पाप का आस्रव है तो, अन्य सम्पदा- दुर्गति में गमन आदि समझने वाले को उस सम्पत्ति से, किम् प्रयोजनम्- कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि पापास्रव काल में मद करना अनुचित है।

सारांश- रत्नत्रय धारी पुरुष के लिये कुल, ऐश्वर्य आदि तुच्छ मालूम होते हैं और जो यह समझता है कि मद करने से नरकादि गति में जाना पड़ता है तो उसे भी मद करने की आवश्यकता नहीं है। पापास्रव होते हुए भी कुलादि के मद का कोई

फल नहीं मिल सकता है।।२७।।

सम्यग्दर्शन का प्रभाव उक्तार्थ को ही प्रगट करते हैं।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढ़ांगारान्तरौजसम्।।28।।

अन्वयार्थ- देवाः- गणधर देव, सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्- सम्यग्दर्शन सहित, मातंगदेहजम् अपि- चाण्डाल को भी, भस्मगूढ़ांगारान्तरौजसम्- भस्म से ढके हुये अंगारे के प्रकाश के समान, देवं- देव, विदुः- कहते हैं।।२८।।

धर्म और अधर्म का फल।

श्वापि देवोपि देवः श्वा, जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्।।29।।

अन्वयार्थ- धर्मकिल्विषात्- धर्म और पाप से, श्वा अपि देवः- कुत्ता भी देव और, देवः अपि श्वा- देव भी कुत्ता, जायते- हो जाता है, शरीरिणाम्- संसारी प्राणियों को, धर्मात् अन्या- धर्म के सिवाय दूसरी, कापि नाम सम्पत्- वचनागोचर विभूति, भवेत्- होगी। ऐसा होने पर बुद्धिमानों को धर्म की ही शरण लेनी चाहिये।।२९।।

सम्यग्दर्शन को म्लान न करें।

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्धदृष्टयः।।30।।

अन्वयार्थ- शुद्धदृष्टयः- सम्यग्दृष्टि जीव, भयाशास्नेहलोभात्- राजा आदि के भय, भविष्य में धनादि की आकांक्षा, मित्रों के अनुराग और वर्तमान में अर्थादि प्राप्ति के लोभ से, कुदेवागमलिंगिनाम्- कुदेव, कुशास्त्र और कुलिगिंयों को, प्रणामं- सिर झुकाना, च- और, विनयं एव- हाथ जोड़ना, प्रशंसा करना आदि विनय भी, न कुर्युः- न करें।।३०।।

सम्यग्दर्शन का महत्व।

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते।।31।।

अन्वयार्थ- दर्शनम्- सम्यग्दर्शन, ज्ञानचारित्रात्- ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा, साधिमानम्- उत्कृष्टता को, उपाश्नुते- प्राप्त होता है, "यतः"- क्योंकि, तत् दर्शनम्- वह सम्यग्दर्शन, मोक्षमार्गे- रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग में, कर्णधारं- खेवटिया (प्रधान), प्रचक्षते- कहा जाता है। अभिप्राय यह है कि जैसे समुद्र के दूसरे किनारे जाने के लिये नौका की प्रवृत्ति, नौका के खेने वाले- कर्णधार के आधीन रहती है, वैसे ही संसार समुद्र से पार होने के लिये सम्यग्दर्शन के आधीन होकर मोक्षमार्ग

रूप नौका की प्रवृत्ति होती है।।३१।।

उक्त अभिप्राय ही स्पष्ट करते हैं।

विद्यावृत्तस्य संभूति, स्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव।।32।।

अन्वयार्थ- सम्यक्त्वे असति- सम्यक्त्व न रहने पर, विद्यावृत्तस्य- मतिज्ञानादि रूप ज्ञान का और सामायिक आदि चारित्र का, संभूति स्थितिवृद्धि फलोदयाः- प्रादुर्भाव, पदार्थ का ज्ञान होने और कर्म की निर्जरा आदि कारणता होने, उत्पन्न व अधिक बढ़ने, देवादि पूजा और स्वर्ग मोक्ष आदि फल की प्राप्ति ये सब, बीजाभावे- बीज के अभाव में तरो इव- वृक्ष की स्थिति वृद्धि और फल न होने के समान, न सन्ति- नहीं होते हैं।।३२।।

सारांश- जिस प्रकार बीज के होने पर वृक्ष अंकुरित होता है, स्थिर होता है, बढ़ता है और फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के होने पर जीव के मतिज्ञानादि उत्पन्न होते हैं, कर्म की निर्जरा के साधन मिलते हैं, चारित्र की वृद्धि और स्वर्ग आदि फल की प्राप्ति होती है, इसलिये सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के साथ मोक्ष प्राप्ति के लिये सम्यग्दर्शन नितान्त आवश्यक है।।३२।।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृहीश्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुनेः।।33।।

अन्वयार्थ- निर्मोहः- मोहनीय कर्म रहित सम्यग्दृष्टि जीव, गृहस्थः- गृहस्थ, मोक्ष मार्गस्थः- मोक्ष मार्ग में स्थित है किन्तु, मोहवान्- दर्शन मोहनीय सहित, अनगारः- यति, न एव- मोक्ष मार्ग में स्थित नहीं है। इसलिये मोहिनोः मुने- दर्शन सहित मुनि की अपेक्षा, निर्मोहोः गृही-निर्मोह गृहस्थ श्रेयान्- उत्कृष्ट है।।३३।।

न सम्यक्त्वसमं किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नाभ्यत्तनूभृताम्।।34।।

अन्वयार्थ- त्रैकाल्ये- भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में तथा त्रिजगति- ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक में, तनुभृताम्- संसारियों को, सम्यक्त्वसमम्- सम्यग्दर्शन के समान, किन्चित् अपि- अन्य वस्तु, श्रेयः-श्रेष्ठ- उपकारक, न- नहीं है। च- और, मिथ्यात्वसमम्- मिथ्यादर्शन के समान तीन लोक तथा तीन काल में कुछ भी, अश्रेयः - अनुपकारक नहीं है। ।३४।।

सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङनपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाऽप्यव्रतिकाः।।35।।

अन्वयार्थ- सम्यग्दर्शनशुद्धाः अवृतिकाः अपि- सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव व्रत रहित होते हुये भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहिले आयु बांध लेने वाले को छोड़ कर, नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि- नरक, तिर्यंच, नपुंसक और स्त्री पर्याय, च- और, दुष्कुलविकृताल्पायु- नीचकुल विकृत अंग और अल्पायु, दरिद्रताम्- तथा दरिद्रता को, न व्रजन्ति- नहीं प्राप्त होते हैं।। ३५।।

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं।

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः।।36।।

अन्वयार्थ- दर्शनपूताः- सम्यग्दृष्टि, ओजस्तेजोविद्यावीर्य यशो वृद्धिः- विजय विभवसनाथाः- उत्साह, प्रताप, विद्या, विशेष सामर्थ्य, विशेष ख्याति, स्त्री पुत्र सन्मति, अन्य की सम्पत्ति से अपने गुणों की उत्कृष्टा और धनधान्य आदि सम्पत्ति सहित, महाकुलाः- उच्चकुल, महार्था- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ के साधक तथा, मानवतिलकाः- मनुष्यों में प्रधान, भवन्ति- होते हैं।। ३६।।

सम्यग्दृष्टि ही इन्द्र पद पाते हैं।

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमंते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे।।37।

अन्वयार्थ- दृष्टिविशिष्टाः- सम्यग्दृष्टि जीव, स्वर्गे- स्वर्ग में जिनेन्द्रभक्ताः- जिनेन्द्र भगवान के भक्त होते हुए, अष्ट गुणपुष्टितुष्टाः- अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और काम रूपित्व इन आठ गुण सहित तथा शरीर के अवयवों के संगठन से प्रसन्न, प्रकृष्टशोभाजुष्टाः- अन्य देवों की अपेक्षा अधिक शोभायमान, अमराप्सरसाम्- देव-देवियों की, परिषदि- सभा में, चिरम्- बहुकाल तक, रमन्ते- क्रीड़ा करते हैं।। ३७।।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य।

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम्।
वर्तयितुंप्रभवंति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः।।38।।

अन्वयार्थ- स्पष्टदृशः- सम्यग्दर्शन धारक, क्षत्रमौलिशेखरचरणाः- दुष्टों से रक्षा करने वाले राजाओं के मस्तक के मुकुट हैं चरणों में जिनके ऐसे, नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः- नवनिधि और चौदह रत्नों के धारक और, सर्वभूमिपतयः- षट्खण्ड पृथ्वी के स्वामी- चक्रवर्ती होकर, चक्रम्- चक्र रत्न का वर्तयितुम्- स्वतंत्र रूप से, चक्र से साध्य समस्त कार्यों में प्रवर्तन करने के लिये,

प्रभवन्ति- समर्थ होते हैं।।३८।।

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्चनूतपादाम्भोजाः।
दृष्टयासुनिश्चितार्था वृषचक्रधराभवन्ति लोकशरण्याः।।39।।

अन्वयार्थ- दृष्टयासुनिश्चितार्थाः- सम्यग्दर्शन से धर्मादि स्वरूप अर्थों का निश्चय करने वाले, अमरासुरनरपतिभिः- सौधर्म आदि, धरणेन्द्र आदि और चक्रवर्तियों से तथा, यमधरपतिभिः- गणधरों से, नूतपादाम्भोजाः- पूजित कमल चरण, वृषचक्रधराः- धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर और, लोकशरण्याः- तीन लोक के प्राणियों के लिये शरण स्वरूप, भवन्ति- होते हैं।।३९।।

सम्यग्दृष्टि ही मोक्षपद पाते हैं।

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशंकम्।
काष्ठागतसुखविद्याविभवंविमलं भजन्तिदर्शनशरणाः।।40।।

अन्वयार्थ- दर्शनशरणाः- सम्यग्दृष्टि जीव, अजरम्- अजर, अरुजम्- व्याधि रहित, अक्षयम्- प्राप्त अनन्त चतुष्टय का जहाँ क्षय नहीं है, अव्याबाधम्- प्रत्येक प्रकार के दुख के कारण रहित, विशोकभयशंकम्- शोक, भय और शंका रहित काष्ठागतसुखविद्याविभवम्- चरम सीमा को प्राप्त है सुख और ज्ञान की सम्पत्ति जहाँ ऐसे, विमलम्- द्रव्य भाव कर्म रहित, शिवम्- मोक्ष का, भजन्ति- अनुभव करते हैं।।४०।।

सम्यग्दर्शन की महिमा का उपसंहार।

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्।
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्।
लब्ध्वाशिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः।।41।।

अन्वयार्थ- जिनभक्तिः भव्यः- जिनेन्द्र भगवान का भक्त भव्य, अमेयमानं- अपरिमित, देवेन्द्रचक्रमहिमानम्- देवेन्द्रों के समूह में महत्व, अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्- राजाओं के मस्तक से पूजनीय, राजेन्द्रचक्रम्- राजाओं के इन्द्र चक्रवर्ती के चक्ररत्न तथा, अधरीकृत सर्वलोकम्- तीन लोक को दास बना लेने वाले, धर्मेन्द्रचक्रम्- रत्नत्रय अथवा उत्तम क्षमादि धर्म के इन्द्र अर्थात् प्रणयन करने वाले तीर्थंकरों के चक्र को, लब्ध्वा- प्राप्त कर, शिवम्- मुक्ति को, उपैति- प्राप्त करता है।।४१।।

इति समन्तभद्र स्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने प्रथम

परिच्छेदः समाप्तं।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप, सम्यग्ज्ञान का लक्षण

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।।42।।

अन्वयार्थ- यत्- जो ज्ञान पदार्थ को, अन्यूनम्- सम्पूर्ण वस्तु स्वरूप, अनतिरिक्तम्- वस्तु स्वरूप से अधिक नहीं और, विपरीताद् बिना- विपर्यय ज्ञान रहित, याथातथ्यम्- पदार्थ के स्वरूप, निःसन्देहं- शंका रहित, वेद- जानता है, तत्- उसे, आगमिनः- शास्त्रज्ञ, ज्ञानम्- सम्यग्ज्ञान, आहुः- कहते हैं।।४२।।

सारांश- जो यथास्थित स्वरूप को जानता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ऐसा ही ज्ञान जीवादि समस्त पदार्थों के सम्पूर्ण विशेष को केवलज्ञान के समान सम्पूर्णता से स्वरूप के प्रकाशित करने में समर्थ होता है।।४२।।

प्रथमानुयोग का स्वरूप

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितंपुराणमपिपुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः।।43।।

अन्वयार्थ- समीचीनः बोधः- सम्यग्ज्ञान, अर्थाख्यानम्- परमार्थ का व्याख्यान करने वाले, चरितम्- एक पुरुष के आश्रित कथा, पुराणम्- त्रेसठ शलाका पुरुषों के आश्रित कथा, अपि- और, पुण्यम्- पुण्यस्वरूप, बोधिसमाधिनिधानम्- अप्राप्त सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का बोध प्राप्त सम्यग्दर्शनादि का अन्त तक पालना समाधि अथवा धर्म तथा शुक्लध्यान को भी समाधि कहते हैं, इनके कारण स्वरूप प्रथमानुयोगम्- प्रथमानुयोग को, बोधति- जानता है।।४३।।

करणानुयोग का स्वरूप

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च।।44।

अन्वयार्थ- च- और, तथामतिः- प्रथमानुयोग के प्रकरण से मनन करने वाले श्रुतज्ञान, लोकालोकविभक्तेः- लोकाकाश और अलोकाकाश के विभाग, युगपरिवृत्तेः- उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी आदि के परिवर्तन, च- और, चतुर्गतीनाम्- नरक, तिर्यंच, मनुष्य आदि देव- रूप चारों गतियों को, आदर्शम् इव- दर्पण के समान, अवैति- जानता है।।४४।।

चरणानुयोग का स्वरूप

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति।।45।।

अन्वयार्थ- सम्यग्ज्ञानम्- सम्यग्ज्ञान, गृहमेध्यनगाराणाम्- श्रावक और मुनियों के, चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम्- चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के

कारण स्वरूप, चरणानुयोगम्- चरणानुयोग शास्त्र को, विजानाति- जानाता है।।४५।।

द्रव्यानुयोग का स्वरूप

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते।।46।।

अन्वयार्थ- द्रव्यानुयोगदीपः- द्रव्यानुयोग रूपी दीपक, जीवाजीवसुतत्त्वे- उपयोग लक्षणात्मक जीव, इससे विपरीत अजीव इन दोनों तत्त्वों को, पुण्यापुण्ये- पुण्य और पाप को, च- और, बन्धमोक्षौ- मिथ्यात्वादि कर्म से आत्मा का संबंध बंध और बंध के हेतुओं के अभाव और निर्जरा द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का छूटना मोक्ष इन दोनों को, च- और, श्रुतिविद्यालोकम्- भावश्रुत के प्रकाश का, आतनुते- सम्पूर्ण रूप से प्ररूपण करता है।।४६।।

इति श्री समन्तभद्र स्वामी विरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने सम्यग्ज्ञान वर्णनम् नाम द्वितीय परिच्छेद समाप्तं।

चारित्र के धारण की आवश्यकता

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः।।47।।

अन्वयार्थ- मोहतिमिरापहरणे- दर्शनमोहनीय रूप अन्धकार के यथा सम्भव उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम होने पर, दर्शनलाभात्- सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से, अवाप्तसंज्ञानः- सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने वाला, रागद्वेषनिवृत्त्यै- रागद्वेष की निवृत्ति के लिये, चरणम्- चारित्र मोहनीय का नाश होने पर सम्यक्चारित्र को, प्रतिपद्यते- प्राप्त करता है।।४७।।

रागद्वेष की निवृत्ति से चारित्रोत्पत्ति।

रागद्वेषनिवृत्ते र्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन्।।48।।

अन्वयार्थ- रागद्वेषनिवृत्तेः- रागद्वेष के दूर हो जाने से, हिंसा दिनिवर्तना- हिंसादि से निवृत्ति रूप चारित्र, कृताभवति- हो जाता है। क्योंकि, अनपेक्षितार्थ वृत्तिः- द्रव्य प्राप्ति की अभिलाषा रहित, कः पुरुषः- कौन बुद्धिमान पुरुष, नृपतीन्- राजाओं की, सेवते- सेवा करता है।।४८।।

चारित्र का स्वरूप

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्।।49।। अन्वयार्थ- हिंसानृतचौर्येभ्यः- हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुनसेवापरि ग्राहाभ्याम्- मैथुन सेवन और

परिग्रह, एतेभ्यः- इन, पापप्रणालिकाभ्यः- पापास्रव के द्वारों से, विरतिः- विरक्त होना संज्ञस्य- सम्यग्ज्ञानी का, चारित्रम्- चारित्र होता है।।४६।।

चारित्र के भेद

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम्।।50।।

अन्वयार्थ- तत् चरणम्- वह चारित्र, सकलं- सकल और, विकलम्- विकल इस तरह दो प्रकार का है। सर्वसंगविरतानाम्- बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह रहित, अनगाराणाम्- मुनियों का, महाव्रत- रूप सकल और, ससंगानां- परिग्रह सहित, सागाराणाम्- गृहस्थों का, विकलम्- अणुव्रत रूप विकल चारित्र होता है।।५०।।

श्रावकाचार के भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम्।।51।।

अन्वयार्थ- गृहिणां- गृहस्थों का, चरणं- चारित्र, अणुगुणशिक्षा- व्रतात्मकम्- अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत इस तरह, त्रेधा- तीन प्रकार का, तिष्ठति- होता है। त्रयं,तीनों ही यथासंख्यम्- क्रम से पंचत्रिचतुर्भेदम्- पाँच, तीन और चार भेद वाला, आख्यातम्- कहा गया है।।५१।।

अणुव्रत का स्वरूप

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति।।52।।

अन्वयार्थ- प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेय काममूर्च्छाभ्यः- इन्द्रियादिक प्राणों का विनाश, असत्यभाषण, चौर्य, मैथुन और परिग्रह, इन पाँच, स्थूलेभ्यः पापेभ्यः- स्थूल हिंसादि पापों से, व्युपरमणम्- निवृत्त होना, अणुव्रतम्- अणुव्रत, भवति- होता है।।५२।।

अहिंसाणुव्रत का स्वरूप

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः।।53।।

अन्वयार्थ- योगत्रयस्य- मन, वचन, काय के, संकल्पात्- संकल्पी हिंसा का आश्रय लेकर, कृत कारितमननात्- कृत कारित और अनुमोदना से, चरसत्त्वान- द्विन्द्रीय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय न त्रस जीवों को, यत्- जो, न हिनस्ति- नहीं मारता है, तत्- उसे, निपुणाः- हिंसादि विरति के व्रत में विचार रखने वाले, स्थूलवधात्- स्थूल हिंसा से, विरमणम्- विरक्त होना, आहुः- कहते हैं अर्थात् मन, वचन, काय से संकल्पपूर्वक त्रस जीवों का घात न करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है।।५३।।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च।।54।।

अन्वयार्थ- छेदनबन्धनपीडनम्- कान, नाक आदि का काटना छेदन, स्वतंत्र रूप से चलने के लिये रोकना- बंधन, डण्डा, कोड़ा मारना, पीड़न, च- और, अतिभारारोपणम्- उचित भार से अधिक लादना- अतिभारारोपण, अपि- और, आहारवारणा- खाना पीना रोकना - आहार वारण, **पंच** - ये पाँच, **व्यतीचाराः**- अतिचार, स्थूलवधात्- स्थूल बंध से, व्युपरतेः- विरक्त के हैं अर्थात् यें पाँच प्रकार के दोष अहिंसाणुव्रत के होते हैं।

विशेषः- व्यतिचार, व्यतिपात, व्यतिक्रम, विक्षेप अत्याश, व्यतीति अत्यय, अतिगम, व्यतीलंघन और अतिचार इन सब शब्दों का अभिप्राय एक सा है, इसलिये इसका स्पष्ट अर्थ यह है, व्यतिचार शब्द की निरुक्ति अर्थात् शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार है। "विविधा विरूप का वा अतिचाराः दोषाः" अर्थात् अनेक प्रकार के बेढंगे अथवा विलक्षण दोष। इसी प्रकार सब शब्दों की निरुक्ति का अर्थ ऐसा ही होता है। व्रत में दोष लगाना अतिचार और व्रत का भंग होना अनाचार कहलाता है।।५४।।

सत्याणुव्रत का स्वरूप

स्थूलमलीकं न वदित न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम्।।55।।

अन्वयार्थ- यत्- जो, स्थूलम् अलीकम्- स्थूल झूठ, न वदति- नहीं बोलता है, न परान्- न दूसरों से, वादयति- झूठ बुलवाता है तथा, विपदे- आपत्ति में, सत्यम् अपि- सत्य भी न बोले और न सत्य बुलवावे, तत्- उसे, सन्तः- सज्जन्, स्थूलमृषावादवैरमणम्- स्थूल झूठ वचन से विरक्ति होना कहते हैं।

विशेषः- चौराहे पर खडे हुए आदमी से कसाई ने पूछा कि गाय किस तरफ गई है? तो उस आदमी को चाहिये कि यदि गाय पूर्व दिशा में गई तो पश्चिम में गई बतला दे। झूठ बोलने पर भी यह झूठ नहीं कहलायेगा, क्योंकि इस अवसर पर झूठ बोलने से गाय के प्राणों की रक्षा होती है।।५५।।

सत्याणुव्रत के अतीचार

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य।।56।।

अन्वयार्थ- परिवादरहोभ्याख्या- उन्नति और कल्याण की क्रियाओं में कुछ का कुछ कहना परिवाद है। एकान्त में स्त्री पुरुषों द्वारा किये हुए काम को प्रकट करना रहोऽभ्याख्या है, पैशून्यम्- अंग का विकार भौं चलाना आदि से दूसरे का अभिप्राय

जान कर ईर्ष्या आदि से उसे प्रकट कर देना पैशून्य अथवा साकार मन्त्र भेद है, च- और, कूटलेखकरणम्- दूसरे के न कहे हुये, न किये हुये भी काम को उसने ऐसा कहा है, किया है। इस प्रकार ठगने का कारण कूटलेखकरण है, च- और न्यासापहारिता- द्रव्य रख जाने वाले को, संख्या भूल जाने अथवा थोड़ा ले जाने पर इतना ही है, इस प्रकार स्वीकारता का वचन कहना न्यासापहारिता-ये एते- ये, पञ्च पाँच सत्यस्य- सत्याणुव्रत के, व्यतिक्रमाः- अतिचार हैं।।५६।।

अचौर्याणुव्रत का स्वरूप

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वापरस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम्।।57।।

अन्वयार्थ- यत्- जो, निहितम्- रखे हुए, पतितम्- गिरे हुए, वा- अथवा, सुविस्मृतम्- भूले हुए, वा- और, अविसृष्टम्- न दिये हुए, परस्वं- पर के धन को, न हरति- नहीं लेता है, च- और, न अन्यस्मै- न दूसरे को, दत्ते- देता है, तत्- वह, अकृशचौर्यात्- स्थूल चोरी से, उपारमणम्- विरक्त होना अर्थात् अचौर्याणुव्रत है।।५७।।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसम्मिश्राः।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः।।58।।

अन्वयार्थ- चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृश सम्मिश्राः- चोर को स्वयं अथवा दूसरे से प्रेरणा कराना अथवा प्रेरित की अनुमोदना करना चोर प्रयोग, अप्रेरित और अनुमोदित चोर से लाये हुए पदार्थ का ग्रहण कर लेना चौरार्थादान, उचित न्याय के विरुद्ध पदार्थ का ग्रहण करना विलोप अथवा विरुद्ध राज्यातिक्रम है, सदृशसम्मिश्राः- समान तैलादि को घी में मिलाना सदृशसम्मिश्रा अथवा प्रतिरूपक व्यवहार और, हीनाधिक मानोन्मानम्- वरैया पैला यान और तराजु वगैरह उन्माद कहलाते हैं, कम नाप तौलके देना, और बडे नाप तौलसे लेना हीनाधिकमानोन्मान कहलाता है, ये पञ्च- पाँच, अस्तेय- अचौर्याणुव्रत के, व्यतीपाताः- अतिचार हैं।।५८।।

परदारनिवृत्ति का स्वरूप

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि।।59।।

अन्वयार्थ- यत्- जो, पापभीतेः- पापोपार्जन के भय से, न तु- न तो, परदारान्- अन्य की स्त्रियों के पास, गच्छति- जाता है, च- और, न परान्- न दूसरों को, गमयति- भेजता है, सा- उसे, परदारनिवृत्तिः- परस्त्री त्याग, अपि- तथा,

स्वदारसन्तोषानाम- स्वदार सन्तोष नामक अणुव्रत कहते हैं।।५६।।

परदार निवृत्ति के अतिचार

अन्यविवाहाकरणानंग क्रीड़ाविटत्वविपुलतृषः।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः।।60।।

अन्वयार्थ- अन्य विवाहाकरणानंगक्रीड़ाविटत्वविपुलतृषः- कन्यादान को, विवाह कहते हैं, दूसरे का विवाह करना अन्य विवाहकरण, कामदेव के अंगों को छोड़कर दूसरे अंगों में मैथुन करना अनंग क्रीड़ा, मन नीच काय और वचन को प्रयोग करना विटत्व, काम की तीव्र अभिलाषा रखना कामतीव्राभिनिवेश और, इत्वरिकागमनम्- पर पुरुषों के पास गमन करने वाली नीच स्त्री के पास जाना इत्वरिकागमन ये, अस्मरस्य- ब्रह्मचर्याणुव्रत के, पञ्च- पाँच, व्यतीचाराः- अतिचार होते हैं।।६०।।

परिग्रह परिमाणाणु व्रत का स्वरूप

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि।।61।।

अन्वयार्थ- धनधान्यादिग्रन्थम्- गाय आदि धन गेहूँ आदि दस प्रकार के परिग्रह का, परिमाय- प्रमाण करके, ततः अधिकेषुः- उससे अधिक में, निस्पृहता- वाञ्छा न रखना, परिमित परिग्रहः- परिग्रहप्रमाण, अपि- अथवा इच्छा रखना **परिमाण नाम**- इच्छापरिमाण नामक व्रत, **स्यात**- है।।६१।।

परिग्रह परिमाणाणु व्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते।।62।।

अन्वयार्थ- अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि- प्रयोजन से अधिक सवारी रखना अतिवाहन, यह धान्यादि आगे बहुत लाभ देगा इस लोभ से अधिक संग्रह करना अतिसंग्रह, दूसरों का वैभव देख आश्चर्य करना अति विस्मय और लोभवश अधिक भार लादना ये, पञ्च- पाँच, परिमितपरिग्रहस्य- परिग्रह परमाणाणु व्रत के, विक्षेपाः- अतिचार लक्ष्यन्ते- निश्चित किये जाते हैं।।६२।।

पञ्चाणु व्रत धारण करने का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते।।63।।

अन्वयार्थ- निरतिक्रमणाः- अतिचार रहित, पञ्चाणुव्रतनिधिः- पाँच अणुव्रत स्वरूप

निधियाँ, सुरलोकम्- स्वर्गलोग रूप, फलति- फल देती है, यत्र- जहाँ, अवधिः- अवधिज्ञान, अष्टगुणाः- अणिमा महिमादि आठ ऋद्धियाँ, च- और, दिव्यशरीरम्- सप्तधातु रहित दिव्य शरीर, लभ्यन्ते- प्राप्त होते हैं।।६३।।

पञ्चाणुव्रत धारण में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

मातंगो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः, पूजातिशयमुत्तमम्।।64।।

अन्वयार्थ- मातंग- अहिंसाणुव्रत में यमपाल चाण्डाल, च- और, धनदेवः- सत्याणुव्रत में सेठ धनदेव, ततः परः- अचौर्याणुव्रत में, वारिषेणः- वारिषेण, नीली- ब्रह्मचर्य व्रत में नीली, च- और, जयः- परिग्रह परिमाणाणु व्रत में जयकुमार, उत्तमं- उत्तम, पूजातिशयम्- पूजा भाव को, सम्प्राप्ताः- प्राप्त हुए हैं।।६४।।

हिंसादि पाँच पापों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

धनश्री- च, तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम्।।65।।

अन्वयार्थ- धनश्रीसत्यघोषौ- हिंसा में धन श्री नाम की सेठानी, सत्यघो-असत्य में सत्यघोष, च- और, तापसारक्षकौ- चोरी में तापस, कुशील में यमदण्ड नामक कोतवाल, अपि- और, तथा- उसी प्रकार परिग्रह में, श्मश्रुनवनीतः- श्मश्रुनवनीत, इस तरह से पाँच, यथाक्रमम्- क्रमानुसार, उपाख्येयाः- प्रसिद्ध हुए हैं।।६५।।

श्रावक के अष्ट मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागैः, सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः।।66।।

अन्वयार्थ- श्रमणोत्तमाः- जिनेन्द्र भगवान, मद्यमांसमधु त्यागैः सह- मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ, अणुव्रतपञ्चकम्- पाँच अणुव्रतों को, गृहिणाम्- गृहस्थों के, अष्टौ मूलगुणान्- आठ मूलगुण, आहुः- कहते हैं।।६६।।

इति समन्तभद्रस्वामीविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने अणुव्रतवर्णनं नाम तृतीय परिच्छेदः।।3।।

तीन गुणव्रतों के नाम

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यानि गुणव्रतान्यार्याः।।67।।

अन्वयार्थ- आर्याः- गुणों अथवा गुणवानी से प्राप्त किये जाते हैं, पूजित हैं, ऐसे आर्य तीर्थंकरदेवादि, गुणानाम्- अष्टमूलगुणों को, अनुबृंहणात्- बढ़ाने के कारण, दिग्व्रतम्- दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रतम्- अनर्थदण्डव्रत, च- और, भोगोपभोग परिमाणम्- भोगोपभोगपरिमाण को, गुणव्रतानि- गुणव्रत, आख्यानि- कहते हैं।।६७।।

दिग्व्रत का स्वरूप

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै।।68।।

अन्वयार्थ- दिग्वलयं- दिशाओं का, परिगणितंकृत्वा- परिमाण करके, अतः बहिः- इससे बाहर, न यास्यामि- नहीं जाऊँगा, इति- इस प्रकार, आमृत्यणुपाप विनिवृत्यै- मृत्यु पर्यन्त पाप के हटाने के लिये, संकल्पः- संकल्प दृढ़ विचार कर लेना, दिग्व्रतम्- दिग्व्रत नामक गुणव्रत हैं।।६८।।

दिग्व्रत धारण करने की मर्यादा

मकराकर सरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि।।69।।

अन्वयार्थ- दशानां दिशां- दशों दिशाओं के, प्रतिसंहारे- त्याग मे, प्रसिद्धानि- प्रसिद्ध, मकराकर सरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि- सागर, नदी, वन, पर्वत, देश और योजन को, मर्यादाः- मर्यादा, प्राहुः- दिग्व्रत कहते हैं।।१६९।।

दिग्व्रत धारण करने का फल

अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते।।70।।

अन्वयार्थ- दिग्व्रतानि धारयताम्- दिग्व्रत धारण करने वालों के, अवधेः बहिः- मर्यादा से बाहर, अणुपाप प्रतिविरतेः- सूक्ष्म पापों से विरत होने के कारण, अणुव्रतानि- अणुव्रत, पञ्चमहाव्रत परिणति- पंचमहाव्रत के स्वरूप को, प्रपद्यन्ते- प्राप्त होते हैं।।७०।।

दिग्व्रती महाव्रती के समान क्यों होता है?

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुःखधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते।।71।।

अन्वयार्थ- प्रत्याख्यानतनुत्वान्- प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के मन्द हो जाने से, मन्दतराः चरणमोहपरिणामाः- अतिशय मन्द चारित्र मोहनीय के परिणाम, महाव्रताय- महाव्रत के लिये, प्रकल्प्यन्ते- कल्पना किये जाते हैं, "कुतः" क्योंकि वे परिणाम, सत्त्वेन- अस्तित्व से, दुरवधारा- महान कष्ट से निश्चय किये जाने पर भी लक्ष्य में नहीं आ सकते हैं।।७१।।

भावार्थः- यह है कि प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि द्रव्य रूप है, इनके मन्द उदय से भाव रूप चारित्र मोहनीय के परिणाम अतिशय मन्द हो जाते हैं। इन परिणामों का अस्तित्व सहज में ही नहीं जाना जा सकता। इसलिये अतिशय मन्दता के कारण दिग्व्रत में किया हुआ त्याग ही महाव्रत के समान है।।७१।।

महाव्रत का स्वरूप

पंचानां पापानां हिंसादीनां मनोवचः कायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम्।।72।।

अन्वयार्थ- हिंसादीनाम् - हिंसादि, पँचानाम् पापानाम्- पाँच पापों का, मनोवचः कायैः- मन, वचन, और काय से, तु- तथा, कृतकारितानुमोदैः- कृत, कारित और अनुमोदना से, त्यागः- त्याग कर देना, महताम्- श्रेष्ठ पुरुष का, महाव्रतम्- महाव्रत है।।७२।।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते।।73।।

अन्वयार्थ- अज्ञान अथवा प्रमाद से, ऊर्ध्वाधस्तात् तिर्यग्व्यतिपाताः- ऊपर, नीचे आदि विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना, क्षेत्रवृद्धि- क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और, अवधी नाम विस्मरणम्- की हुई मर्यादाओं का भूल जाना ये, पञ्च- पाँच, दिग्विरतेः- दिग्व्रती के, अत्याशाः- अतिचार, मन्यन्ते- माने जाते हैं।।७३।।

अनर्थदण्ड व्रत का स्वरूप

अभ्यंतरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं च विदुर्व्रतधराग्रण्यः।।74।।

अन्वयार्थ- व्रतधराग्रण्यः- व्रत धारण करने वाले मुनियों के प्रधान तीर्थंकर देवादि, दिगवधेः अभ्यन्तरम्- दिशाओं की मर्यादा के भीतर, अपार्थिकेभ्यः- निष्प्रयोजन, सपापयोगेभ्यः- पाप सहित योगों से- पापोपदेशादि से, विरमणम्- विरक्त होने को, अनर्थदण्डव्रतम्- अनर्थ दण्डव्रत, विदुः- कहते हैं।।७४।।

अनर्थदण्ड के पाँच भेद

पापोपदेश हिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः।।75।।

अन्वयार्थ- अदण्डधराः- दण्ड से अशुभ मन, वचन, काय का अभिप्राय है, क्योंकि वे पर पीड़ाकारक हैं। जो पर पीड़ा न पहुँचावें वे अदण्डधर, गणधर देव आदि, पापोपदेशहिंसादानापध्यान दुःश्रुतीः- पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और, प्रमादचर्याम्- प्रमादचर्या इन, पंच- पाँच पापों को, अनर्थदण्डान्- अनर्थ दण्ड, प्राहुः- कहते हैं।।७५।।

पापोपदेशनामा अनर्थदण्ड

तिर्यक्क्लेश वणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसंगप्रसवः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः।।76।।

अन्वयार्थ- तिर्यक् क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्- हाथी आदि पशुओं को अंकुश आदि लगाना तिर्यक्क्लेश, क्रय विक्रयादि वाणिज्य, प्राणियों का वध करना हिंसा, कृषि आदि करना आरम्भ ठगना प्रलम्भन आदि की, कथा प्रसंग प्रसवः- कथाओं के प्रसंग से उत्पन्न, पापः उपदेशः- पापोपदेशनामा अनर्थ दण्ड, स्मर्त्तव्यः- जानना चाहिये।।७६।।

हिंसादाननामा अनर्थदण्ड का स्वरूप

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधश्रृंगिश्रृंखलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः।।77।।

अन्वयार्थ- बुधाः- गणधर देवादिक, परशुकृपाणखनित्र ज्वलनायुधश्रृंगि- श्रृंखलादीनाम्- फरसा, तलवार, कुदाल या फावड़ा, अग्नि, शस्त्र, सींग, सांकल, आदि, वधहेतूनाम्- हिंसा के कारणों के, दानम्- दान को, हिंसादानम्- हिंसा दान अनर्थदण्ड, ब्रुविन्त- कहते हैं।।७७।।

अपध्यान अनर्थदण्ड का स्वरूप

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः।।78।।

अन्वयार्थ- जिनशासने विशदाः- जैन मत में विशद- आचार्य, द्वेषात्- द्वेष, च- और, रागात्- राग से, परकलत्रादेः- परस्त्री आदि के, वधबन्धच्छेदादेः- मारने, बांधने और अंग छेदने आदि के, आध्यानम्- चिन्तन करने को, अपध्यानम्- अपध्यान अनर्थदण्ड, शासति- कहते हैं।।७८।।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का स्वरूप

आरम्भसंगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।
चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति।।79।।

अन्वयार्थ- आरम्भ संगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमद्मदनैः- कृषि आदि आरम्भ, परिग्रह संग, वीरों की कथा में अद्भुत साहस, अद्वैत क्षणिकादि प्रमाण विरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक शास्त्र से मिथ्यात्व, विद्वेष वशीकरणादि शास्त्र से राग, वर्णों का गुरु ग्राह्यण होता है इत्यादि ग्रन्थों से मद, रतिगुण विलास आदि शास्त्र से मदन कामदेव, होता है। इन सबसे, चेतः कलुषयताम्- चित्त को क्लेशमय करने वाले, अवधीनाम्- शास्त्रों का, श्रुतिः- श्रवण करना, दुःश्रुति- दुःश्रुति अनर्थदण्ड, भवति- होता है।।७९।।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का स्वरूप

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्या प्रभाषन्ते।।80।।

अन्वयार्थ- गणधरादि, विफलम्- प्रयोजन के बिना, क्षिति सलिलदहन- पवनारम्भम्-

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के आरम्भ, वनस्पतिच्छेदम्- वृक्षों का छेदन, **सरणम्**- पर्यटन, च- और, सारणम्- पर्यटन कराने को, अपि- भी, **प्रमादचर्याम्'** प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड, प्रभाषन्ते- कहते हैं।।८०।।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

कन्दर्प कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्यचाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः।।81।।

अन्वयार्थ- कन्दर्पम् कौत्कुच्यम् मौखर्यम्- राग के उदय से हास्यमिश्रित भण्ड वचन बोलना कन्दर्प, हास्य करना, भण्ड वचन नहीं बोलना, किन्तु काय से नीच काम करना कौत्कुच्य, धृष्टतापूर्वक बहुत बकवाद करना मौखर्य, अतिप्रसाधनम्- आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग की सामग्री बढ़ाना अतिप्रसाधन, च- और, असमीक्ष्य अधिकरणम्- बिना प्रयोजन का विचार किये अधिक काम करना असमीक्ष्याधिकरण ये, पंच- पाँच, अनर्थदण्डकृद्विरतेः- अनर्थदण्डव्रत के, व्यतीतयः- अतिचार होते हैं।।८१।।

भोगोपभोग परिमाणव्रत का स्वरूप

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये।।82।।

अन्वयार्थ- रागरतीनाम्- राग के उदय से आसक्ति को, तनूकृतये- कमी करने के लिये, अवधौ- विषयों के परिमाण मे, अर्थवताम्- प्रयोजनभूत अथवा सुखादि देने वाले पदार्थों का, अपि- भी, अक्षार्थानाम्- इन्द्रिय विषयों का, परिसंख्यानम्- परिमाण करना, भोगोपभोगपरिमाणम्- भोगोपभोगपरिमाण- व्रत है।।८२।।

भोग और उपभोग का लक्षण व दृष्टान्त

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पंचेन्द्रियो विषयः।।83।।

अन्वयार्थ- अशनवसनप्रभृतिः- भोजन वस्त्र आदि, पंचेन्द्रियः विषयः- स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों के विषय को, भुक्त्वा- भोग कर, परिहातव्यः- छोड़ देने योग्य हो वह, भोगः- भोग है, जैसे- भोजन, फूल, गन्ध, लेप, आदि। च- और भुक्त्वा- भोग कर, पुनः भोक्तव्यः- दुबारा भोगने योग्य हो वह, उपभोगः- उपभोग है, जैसे- वस्त्र, आभूषण इत्यादि।।८३।।

विशेषः- क्रम से इनके नामान्तर उपभोग और परिभोग भी हैं।।83।।

भोगोपभोग परिमाणव्रत में विशेष त्याग

त्रसहति परिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः।।84।।

अन्वयार्थ- जिनचरणौ शरणं- जिनेन्द्र भगवान के चरणों की शरण में, उपयातैः-

आने वालों को, त्रसहतिपरिहरणार्थम्- द्वीन्द्रियादि जीवों की हिंसा से बचने के लिये, क्षौद्रम- मधु, पिशितम्- मांस, च- और, प्रमादपरिहृतये- प्रमाद को दूर करने के लिये, मद्यम्- मदिरा शराब, वर्जनीयम्- छोड़ देनी चाहिये।।८४।।

निम्न पदार्थ भी त्याज्य है।

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि श्रृंगवेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम्।।85।।

अन्वयार्थ- अल्पफलबहुविघातान्- थोड़ा फल और अधिक त्रस हिंसा के कारण, आर्द्राणि- बिना पके अथवा सचित्त, श्रृंगवेराणि- अदरख, मूलकम्- मूली, गाजर, आदि, नवनीतनिम्बकुसुमं- मक्खन और नीम के फूल, कैतकम्- केतकी के फूल और, एवं- इसी प्रकार अनन्तकार कहलाने वाले और बहुजीवोत्पत्ति कारणभूत अन्य (जमी कन्द) और फूल आदि भी, अवहेयम्- त्याग देना चाहिये।।८५।।

नोटः- सूखी हल्दी और सौंठ ले सकते हैं क्योंकि वह कंद नहीं काष्ठ वनस्पति है।

व्रत का लक्षण

यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति।।86।।

अन्वयार्थ- यत्- जो, अनिष्टम्- उदरशूलादि के प्रकृति के प्रतिकूल हो, तत्- वह, व्रतयेत्- छोड़ दे, च- और, यत्- जो; अनुपसेव्यम्- गोमूत्र, गधी का दूध, शंखचूर्ण, लार, मूत्र, विष्टा, खकार आदि सभ्य पुरुषों के सेवन न करने योग्य पदार्थ हैं, **एतत् अपि**- यह भी छोड दे क्योंकि, योग्यात् विषयात्- योग्य विषय से, अभिसन्धिकृता- अभिप्रायपूर्व, विरतिः- त्याग, व्रतं- व्रत, भवति- होता है, नियम न होने पर इष्ट रंग बिरंगे भडकीले फैशन के वस्त्र आभूषण आदि का भी त्याग करना चाहिये।।८६।।

यम-नियम व्रत का स्वरूप

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोग संहारे।
नियमः परिमितकालो, यावज्जीवं यमोध्रियते।।87।।

अन्वयार्थ- भोगोपभोग संहारे- भोग और उपभोग के त्याग में, नियमः- नियम, च- और, यमः- यम इस प्रकार, द्वेधा- दो भेद, विहितौ- किये गये हैं। परिमितकालः- निश्चित काल त्याग का परिमाण करना भोगोपभोग परिमाणव्रत का, नियमः- नियम है और, यावज्जीवम्- मरण पर्यन्त त्याग करना, यमः- भोगोपभोग परिमाणव्रत का यम है।।८७।।

नियम करने का विषय और त्याग

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्रांगरागकुसुमेषु।
ताम्बूल वसनभूषणमन्मथ संगीत गीतेषु।।88।।
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।

इतिकालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः।89।।

अन्वयार्थ- भोजनवाहनशयनस्नानपवित्रांगराग कुसुमेषु- भोजन, घोड़ा आदि सवारी, पलंग आदि, स्नान, कुसुमादि, लेप, अज्ञान, तिलक आदि और फूल आदि में तथा ताम्बूलवसन भूषणमन्मथसंगीतगीतेषु- पान, वस्त्र, सोने के कडे कुण्डलादि भूषण, कामसेवन, गीत और नृत्य बाजे सहित संगीत और जिसमें नृत्य और बाजा न हो वह गीत, सब विषयों में, अद्य दिवा रजनीवा- प्रवर्तमान दिन, रात्रि, पहर, दोपहर, पक्षः- एक पक्ष तैसे ही, मासः- एक महीना, तथा- और, ऋतुः- दो महीने, वा- अथवा, अयनम्- छः मास, इति, इस प्रकार, कालपरिच्छित्या- कालके भेदसे, प्रत्याख्यानम्- त्याग करना, नियमः- नियम, भवेत्- होता है।।८८-८९।

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवोः।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते।।90।।

अन्वयार्थ- विषय विषतः- जैसे विष प्राणियों को दाह, सन्ताप, मूर्छा आदि करता है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय विषय भी प्राणियों को कष्ट पहुँचाते हैं, इसलिये इनसे, अनुपेक्षा- त्याग का अभाव विषयों में आदर, विषयों की वेदना के प्रतिकार के लिये विषय सेवन किया जाता है, प्रतीकार होने पर भी मीठा बोलना, आलिंगन करना आदि आदर करने से अतिचार लगता है, अनुस्मृतिः- सौन्दर्य, सुकुमारता आदि सुख साधन होने के कारणों का स्मरण करना, अतिलौल्यम्- बार बार विषयों के भोगने की अभिलाषा रखना, अतितृषा- भोगोपभोगादि की अधिक आकांक्षा करना, अनुभवो- नियतकाल में भी जब भोगोपभोग का अनुभव होता है तब अधिक आसक्ति के कारण अतीचार लगता है, ये पञ्च- पाँच, भोगोपभोगपरिमाण व्यतिक्रमः- भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार, कथ्यन्ते- कहे जाते हैं।।९०।।

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने गुणव्रतवर्णनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः।4।।

शिक्षाव्रतों के नाम

देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि।91।।

अन्वयार्थ- देशावकाशिकम्- देशावकाशिक, वा- तथा, सामायिकम्- सामायिक, प्रोषधोपवासः- प्रोषधोपवास, वा- तथा, वैयावृत्त्यम्- वैयावृत्य ये, चत्वारि- चार, शिक्षाव्रतानि- शिक्षाव्रत, शिष्टानि- कहे जाते हैं।।९१।।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य।92।।

अन्वयार्थ- विशालस्य देशस्य- मर्यादा किये हुए विशाल देश अर्थात् दिग्व्रत के,

कालपरिच्छेदनेन- दिवस आदि काल की मर्यादा से, प्रत्यहम्- प्रति दिन प्रतिसंहारः- त्याग नियम करना, अणुव्रतानाम्- अणुव्रतों का, देशावकाशिकम्- देशावकाशिक व्रत, स्यात्- है।।९२।।

देशावकाशिक क्षेत्र की मर्यादा

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशादकाशिकस्य स्मरंति सीम्नां तपोवृद्धाः।।93।।

अन्वयार्थ- तपोवृद्धाः- गणधर देवादिक, देशावकाशिकस्य- देशावकाशिक के क्षेत्र की, सीम्नाम्- मर्यादा, गृहहारिग्रामाणाम्- घर कटक, ग्राम, च- और, क्षेत्रनदीदावयोजनानाम्- खेत, नदी, वन, योजन को, स्मरन्ति- कहते हैं।।९३।।

देशावकाशिक काल की मर्यादा

संवत्सरमृतुरयनं मास चतुर्मास पक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः।।94।।

अन्वयार्थ- प्राज्ञाः- गणधरदेवादिक, देशावकाशिकस्य- देशावकाशिक व्रत की, संवत्सरम्- एक वर्ष, ऋतु- दो मास, अयनं- छः मास, मासचतुर्मासपक्षम्- एक मास, चार मास, एक पक्ष, च- और, मृक्षं- चन्द्रमुक्ति और आदित्यमुक्ति इत्यादि नक्षत्र तक, कालावधिं- काल की मर्यादा, आहुः- कहते हैं।।९४।।

देशव्रती के उपचार से महाव्रत

सीमानानां परतः स्थूलेतर पञ्चपाप संत्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते।।95।।

अन्वयार्थ- सीमानानां परतः- सीमाओं के आगे, स्थूलेतरपञ्चपाप संत्यागात्- स्थूल और सूक्ष्म पापों के त्याग से, देशावकाशिकेन च- देशावकाशिकव्रत के द्वारा भी, महाव्रतानि- महाव्रत, प्रसाध्यन्ते- साधे जा सकते हैं।।९५।।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च।।96।।

अन्वयार्थ- प्रेषणशब्दानयनं- स्वयं मर्यादित देश में रहते हुए उससे बाहर 'ऐसा करो' ऐसी आज्ञा करना प्रेषण, मर्यादा से बाहर काम करने वालों को लक्ष्य कर खंकारना आदि शब्द, मर्यादा से बाहर प्रयोजनवश 'यह लाओ' इस प्रकार आज्ञा देना आनयनं, रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ- मर्यादा से स्थिर होकर भी बाहर काम करने वालों को अपना शरीर दिखलाना रूपाभिव्यक्ति, और मर्यादा से बाहर काम करने वालों को लक्ष्य कर कंकड़ वगैरह फेंकना पुद्गलक्षेप, पञ्च- पाँच, देशावकाशिकस्य देशाव (काशिकव्रत) के, अत्ययाः- अतिचार, व्यपदिश्यन्ते- कहे जाते हैं।।९६।।

सामायिक शिक्षाव्रत

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामायिकाः सामायिकं नामशंसन्ति।।97।।

अन्वयार्थ- सामायिकाः- गणधरदेवादि, अशेषभावेन- समस्त रूप बाहर और भीतर, आसमयमुक्ति- ग्रहण किये हुए नियम के काल पर्यन्त, सर्वत्र च- मर्यादा किये हुए क्षेत्र में व मर्यादा के बाहर क्षेत्र में मन, वचन, काय से, पञ्चाघानाम्- पाँच पापों के, मुक्तम्- त्याग करने को, सामायिकं नाम- सामायिक नाम, शंसन्ति- कहते हैं।।९७।।

आसमयमुक्ति में "समय" का अर्थ

मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्यंकबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः।।98।।

अन्वयार्थ- समयज्ञाः- आगम के ज्ञाता, मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धनम्- केश बांधना, मुट्ठी बांधना, वस्त्र बांधना, च- और, पर्यंक बन्धनं- पालती बांधना व कायोत्सर्ग, अपि- च और, स्थानम्- कायोत्सर्ग, आसन के काल को, उपवेशनम्- सामान्य से आसन के काल को, समयम्- सामायिक के योग्य समय, जानन्ति- जानते हैं।।९८।।

सामायिक करने का स्थान

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया।।99।।

अन्वयार्थ- निर्व्याक्षेपे- चित्त की व्याकुलता रहित शीत या उष्ण स्थान मच्छर आदि की बाधा रहित, एकान्ते- स्त्री, पशु, पक्षी, आदि के शब्द रहित स्थान में, च- और वनेषु- वनों में, वा- अथवा, वास्तुषु- घरों में, च- और, चैत्यालयेषु अपि- चैत्यालयों में और पर्वतों की गुफा में, प्रसन्नधिया- एकान्त चित्त से, सामयिकम्- सामायिक, परिचेतव्यम्- चित्त लगा कर करना चाहिये।।९९।।

कैसे सामायिक करें?

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा।।100।।

अन्वयार्थ- व्यापारवैमनस्यात्- कायादि चेष्टा व्यापार, चित्त की कलुषता वैमनस्य, इन दोनों से, विनिवृत्त्याम्- निवृत्त होने पर, अन्तरात्मविनिवृत्त्या- अन्तरात्मा के विकल्पों का त्याग कर, उपवासे- उपवास काल में, च- और, एकभुक्ते वा- एकाशन काल में भी, सामयिकम्- सामायिक, बध्नीयात्- करना चाहिये।।१००।।

सामायिक पर्वों में करे या कब?

सामायिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम्।

व्रतपञ्चक परिपूरण कारणमवधान युक्तेन ॥101॥

अन्वयार्थ- प्रतिदिवसम्- प्रतिदिन, अनलसेन- आलस्य रहित होकर, अपि- और, अवधानयुक्तेन- एकाग्रचित्त से, व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणम्- अणुव्रतों का महाव्रत बनाने के कारण स्वरूप, सामयिकं- सामायिक को, यथावत्- उक्त विधि के अनुसार ही, चेतव्यम्- बढ़ाना चाहिये।।१०१।।

अर्थात्- अणुव्रतों का महाव्रत बनाने में प्रधान कारण सामायिक है, इसलिये नियमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर सामायिक अवश्य करना चाहिये।।१०१।।

सामायिक में श्रावक मुनि जैसा क्यों हो जाता है?

सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यति भावम् ॥102॥

अन्वयार्थ- सामायिके- सामायिक काल में, सर्व अपि- सभी, सारम्भाः परिग्रहा- कृषि आदि आरम्भ सहित परिग्रह, न एव- नहीं, सन्ति- होते हैं, तदा- उस समय, गृही- श्रावक, चेलोपसृष्टमुनिः एव- उपसर्ग के कारण वस्त्र धारित मुनि के समान, यतिभावं- मुनिपने को, याति- प्राप्त होता है।।१०२।।

सारांश- यह है कि मुनि तिलतुषमात्र वस्त्रादि परिग्रह नहीं रखते, किन्तु यदि कोई मुनि पर वस्त्र डाल दे तो उपसर्ग समझा जाता है, ठीक उसी तरह सामायिक करता हुआ श्रावक भी यद्यपि कपड़ा पहने हुये है तो भी समस्त परिग्रह व पापों का त्याग होने से उन उपसर्ग कालीन वस्त्र से ढके हुये मुनि की तरह श्रावक मुनि जैसा मालूम पड़ता है।।१०२।।

सामायिक में परीषह सहन करना चाहिये

शीतोष्णदंशमशक परीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्न चलयोगाः ॥103॥

अन्वयार्थ- सामयिकं प्रतिपन्नाः- सामायिक को स्वीकार करने वाले अर्थात् सामायिक करने वाले, मौनधराः- मौन धारण कर, अचलयोगाः- मन, वचन और काय को निश्चल रखते हुय अर्थात् प्रतिज्ञा किये हुए अनुष्ठान को न छोडने वाले, शीतोष्णदंशमशक परीषहम्- शीत, उष्ण और दंशमशक आदि परीषहो को, च- और, उपसर्गमपि- मनुष्य, देव और तिर्यंचकृत उपसर्ग को भी, अधिकुर्वीरन्- सहन करें।।१०३।।

सामायिक में इस प्रकार ध्यान करे

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामिभवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥104॥

अन्वयार्थ- अहं- मैं, अशरणं- अशरण, अशुभम्- अशुभ, अनित्यम- अनित्य, दुखम्- दुख का कारण, अनात्मानम्- अनात्म स्वरूप, भवम्- संसार में, आवसामि- बसता

हूँ और, मोक्षः- मोक्ष, तद्विपरीतात्मा- शरण स्वरूप शुभ- रूप, नित्य रूप और आत्मा स्वरूप है, इति- इस प्रकार, सामयिके- सामायिक में, ध्यायन्तु- ध्यान करना चाहिये।।१०४।।

सामायिक शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा व्यञ्जन्ते पञ्चभावेन।।105।।

अन्वयार्थ- वाक्कायमानसानाम्- वचन, काय और मन का, दुप्रणिधानानि- चंचल रखना, अनादरास्मरणे- सामायिक में उत्साह न रखना, एकाग्रता न रखना पाठ भूल जाना ये, पञ्च- पाँच, भावेन- परमार्थ से, सामयिकस्य- सामायिक के, अतिगमाः- अतिचार, व्यञ्जन्ते- कहे जाते हैं।।१०५।।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः।।106।।

अन्वयार्थ- पर्वणि- चतुर्दशी, च- और, अष्टम्याम्- अष्टमी के दिन, सदा- सदा, इच्छाभिः- व्रत विधान की अभिलाषाओं से, चतुरभ्यवहार्य्याणाम्- अशन, पान, खाद्य और लेह्य भोज्य पदार्थों का, प्रत्याख्यानम्- त्याग करना, प्रोषधोपवासः- प्रोषधोपवास, ज्ञातव्यः- जानना चाहिये।।१०६।।

उपवास के दिन क्या त्याज्य कार्य?

पञ्चानांपापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात्।।107।।

अन्वयार्थ- उपवासे- उपवास के दिन, पञ्चानां पापानाम्- पाँच पापों का, अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्- श्रृंगार वाणिज्यादि व्यापार, सुगन्धित पुष्प आदि रागवर्धक पदार्थों का और, स्नानाञ्जन नस्यानाम्- स्नान, अंजन, नस्यसूंघनी का, परिहृतिं- त्याग, कुर्यात्- करे।।१०७।।

उपवास के दिन का कर्तव्य

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः।।108।।

अन्वयार्थ- उपवसन्- उपवास करते हुए, अतन्द्रालुः- निद्रा, आलस्य रहित सावधान चित्त हो, श्रवणाभ्यां- कानों से, सतृष्णः- अभिलाषा सहित, धर्मामृतं- धर्मरूपी अमृत का, पिबतु- पान करे, वा- और स्वयं धर्म का स्वरूप समझ कर, अन्यान्- दूसरों को, पाययेत्- पान करावे, वा- अथवा, ज्ञानध्यानपरः- ज्ञान में और अशरण आदि द्वादश भावनाओं में लीन, भवतु- होवे।।१०८।।

प्रोषध और उपवास

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति।।109।।

अन्वयार्थ- चतुराहारविसर्जनम्- दाल, रोटी, भात आदि अशन, दूध, दही आदि पान, मोदक आदि खाद्य और रबड़ी आदि लेह्य पदार्थों का चार प्रकार के आहार का त्याग करना, उपवासः- उपवास और, सकृद्भुक्तिः- एक बार भोजन करना, प्रोषध- प्रोषध और, यत्- जो, उपोष्य- प्रोषध अर्थात् एकाशनपूर्वक उपवास करके, आरम्भम्- पारणा के दिन एक बार भोजन, आचरति- करते हैं, सः- वह, प्रोषधोपवासः- प्रोषधोपवास, "अभिधीयते" कहा जाता है।।१०६।।

प्रोषधोपवास के पाँच अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणान्य दृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे।
यत्प्रोषधोपवासः व्यतिलंघनपंञ्चकं तदिदम्।।110।।

अन्वयार्थ- यत्- जो, अदृष्टमृष्टानि- जन्तु हैं या नहीं, ऐसा आँखों से देखना दृष्ट, मृदु उपकरण से साफ करना मृष्ट, ऐसा न कर, ग्रहणविसर्गास्तरणानि- पूजादि के उपकरण और अपने पहनने के कपडे आदि ग्रहण करना, मलमूत्रादिक का त्याग करना और बिस्तर वगैरह बिछाना, अनादरास्मरणे- क्षुधा पीड़ित होने से अनादर और अनेकाग्रता रूप विस्मरण करना, तत्- सो, इदम्- ये, प्रोषधोपवासव्यतिलंघन-पञ्चकं- प्रोषधोपवास के पाँच अतिचार हैं।।११०।।

वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रत

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन।।111।।

अन्वयार्थ- गुणनिधये- सम्यग्दर्शनादि गुण सम्पन्न, अगृहाय- भावगृह और द्रव्यगृह रहित, तपोधनाय- तपस्वियों को, विभवेन- विधि द्रव्य आदि सम्पत्ति से, धर्माय- धर्म के निमित्त, अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्- उपचार अर्थात् प्रतिदिन, उपक्रिया और मन्त्रादि से प्रत्युपकार इन दोनों की वांछारहित, दानम्- दान, वैयावृत्यम्- वैयावृत्यनामक शिक्षाव्रत हैं।।१११।।

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्ययावानुपग्रहोऽन्योऽपिसंयमिनाम्।।112।।

अन्वयार्थ- गुणरागात्- व्यवहार व दृष्ट फल की अपेक्षा न कर मुक्तिवश गुणों में अनुराग होने से, संयमिनां- देश व सकल संयमियों की, व्यापत्तिव्यपनोदः- व्याधि आदि जनित आपत्ति का दूर करना, च- और, पदयोः- चरणों का, संवाहनम्- मलना या दाबना तथा, अन्योऽपि- और भी, यावान् उपग्रहः- जितना उपकार हो वह, वैयावृत्यम्- वैयावृत्य है।।११२।।

दान का स्वरूप

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम्।।113।।

अन्वयार्थ- सप्तगुणसमाहितेन- सप्तगुण सहित, शुद्धेन- शुद्ध श्रावक, अपसूनारम्भाणाम्- पंचसून रहित, आर्याणाम्- सम्यग्दर्शनादिगुणसहितों का, नवपुण्यैः- नवधा भक्ति से, प्रतिपत्तिः- आदर सत्कार करना, दानम्- दान, इष्यते- कहा जाता है।।११३।।

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि।।114।।

अन्वयार्थ- गृहविमुक्तानां- गृह व सावद्यव्यापार से रहित, अतिथीनाम्- अतिथियों मुनियों को, प्रतिपूजा- दान, खलु- निश्चय ही, गृहकर्मणा- साधक व्यापार से, निचितं अपि- उपार्जन किये हुए, कर्म- पाप रूप कर्म को, विमार्ष्टि- नष्ट कर देता है। जैसे, वारि- पानी, रुधिरम्- खून को अपवित्र खून मल को भी, अलं- यथार्थ में, धावते- धो देता है।।११४।।

सारांश- मलिन अपवित्र पानी भी खून को धो देता है, इसी प्रकार मुनियों अथवा उत्तम पात्रों को दान देने से गृहस्थ संबंधी पाप रूप कर्म अवश्य दूर हो जाते हैं।।११४।।

नवधाभक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु।।115।।

अन्वयार्थ- तपोनिधिषु- तपस्वियों को, प्रणतेः- प्रणाम करने से, उच्चैर्गोत्रम्- उच्च गोत्र, दानात्- दर्शनशुद्धि स्वरूप यथाविधि दान देने से, भोगः- भोग सामग्री, उपासनात्- पड़गाहना आदि से, पूजा- प्रतिष्ठा, भक्तेः- गुणानुराग से उत्पन्न अन्तरंग श्रद्धा से, सुन्दररूपम्- सुन्दर रूप और, स्तवनात्- स्तुति करने से सर्वत्र, कीर्तिः- कीर्ति प्राप्त होती है।।११५।।

अल्पदान से महाफल की प्राप्ति

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।।116।।

अन्वयार्थ- काले- उचित काल में, पात्रगतम्- सत्पात्र को दिया हुआ अल्पम् अपि- थोड़ा भी, दानम्- दान, शरीरभृताम्- संसारी जीवों को, क्षितिगतम्- योग्य क्षेत्र में

डाला हुआ, अल्पम् अपि- छोटा भी, वटबीजम्- बड़ का बीज, छायाविभवं इव- आताप को रोकने वाली छाया की अधिकता के समान, इष्टम्- अनेक प्रकार के सुन्दर रूप आदि, बहुफलम्- बहुत फल, फलति- फलता है।

सार यह है कि जैसे- बहुत छोटे बड़ के बीज को योग्य क्षेत्र में बोने पर बहुत अधिक छाया और फलवाला वृक्ष उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यथावसर सुपात्र को थोड़ा भी विधिपूर्वक दिया हुआ दान ऐहिक सुख के साथ पारलौकिक सुख देता है।।११६।।

दान के भेद

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः।।117।।

अन्वयार्थ- चतुरस्राः- पण्डित, आहारौषधयोः- भोजनादि देना आहारदान, व्याधिनिवारक द्रव्य देना औषधिदान, अपि- और, उपकरणावासयोः- ज्ञानोपकरण शास्त्रादि देना उपकरणदान और वसतिका आदि रहने का स्थान देना आवासदान में भी, दानेन- दान द्वारा, चतुरात्मत्वेन- चार प्रकार का, वैयावृत्यम्- वैयावृत्य, ब्रुवते- कहते हैं।।११७।।

दान में प्रसिद्ध

श्रीषेणवृषभसेनेः कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः।।118।।

अन्यार्थ- श्रीषेणवृषभसेनेः- आहार दान में श्रीषेण और औषधिदान में वृषभसेन, कौण्डेशः- शास्त्र दान में कौण्डेश, च- और आवास वसतिका दान में, शूकरः- शूकर, एते- ये चार, चतुर्विकल्पस्य- चार प्रकार के, वैयावृत्यस्य- वैयावृत्ति के, दृष्टान्ताः- दृष्टान्त, मन्तव्याः- मानने चाहिये।।११८।।

अर्हत्पूजा का वैयावृत्य में अन्तर्भाव

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं।।119।।

अन्वयार्थ- कामदुहि- वांछित फल प्रदान करने वाले और, कामदाहिनि- काम को विध्वंस करने वाले, देवाधिदेवचरणे- इन्द्रादिकों से वन्दनीय, देवाधिदेव के चरणों की, परिचरणम्- पूजा करना, सर्वदुःख निर्हरणम्- समस्त दुखों का विनाशक है। इसलिये, आदृतः- आदरपूर्वक, नित्यम्- प्रतिदिन, परिचिनुयात्- पूजन करना चाहिये।।११९।।

पूजा का माहात्म्य और उसका फल भोक्ता

अर्हच्चरणं सपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्।

भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥120॥

अन्वयार्थ- अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावम्- अर्हन्त भगवान के चरणों की पूजा का विशिष्ट महात्म्य, राजगृहे- राजगृह नगर में, एकेन- एक, कुसुमेन- फूल द्वारा, प्रमोदमत्तः- विशिष्ट धर्मानुराग सहित होकर, भेकः- एक मेंढ़क, महात्मनाम्- भव्य जीवों को, अवदत- कहता हुआ।

सार यह है कि एक मेंढ़क ने भक्तिपूर्वक अर्हन्त भगवान की पूजा से स्वर्ग प्राप्त किया है यदि इस प्रकार भव्यजीव भी अर्हन्तपूजन आदि करें तो क्या नहीं प्राप्त कर सकते? उन्हें मुक्ति- लक्ष्मी प्राप्त कर लेना सहज है।।१२०।।

वैयावृत्य के अतीचार

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥121॥

अन्वयार्थः- हरितपिधाननिधाने- आहार को हरे कमल पत्र आदि से ढाकना, हरितपिधान हरे पत्र में रखना, अनादरा स्मरणमत्सरत्वानि- आहार देते समय आदर न करना अनादर, आहारादि दान इस समय ऐसे पात्र के लिये देना चाहिये, दिया या नहीं दिया इस प्रकार कि स्मृति न रखना अस्मरण- और दूसरे के दानगुण की असहनशीलता मत्सरत्व एते- ये, पञ्च- पाँच, वैयावृत्यस्य- वैयावृत्य के, व्यतिक्रमाः- अतिचार, कथ्यन्ते- कहे जाते हैं।।१२1।।

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने शिक्षाव्रतवर्णनं नाम पंचमः परिच्छेदः समाप्तः ॥5॥

सल्लेखना का स्वरूप

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122॥

अन्वयार्थ- आर्याः- गणधरदेवादि, निःप्रतीकारे- उपाय के अभाव में, उपसर्गे- तिर्यंच, मनुष्य और देवकृत उपसर्ग आने पर, दुर्भिक्षे- अन्नादि का अभाव, भूकम्प अथवा बाढ़ आने पर, जरसि- बुढ़ापा आने पर, च- और, रुजायां- रुग्ण होने पर, धर्माय- रत्नत्रय की उपासना के लिये, तनुविमोचनम्- शरीर का त्याग करना, सल्लेखनाम्- सल्लेखना, आहुः- कहते हैं।।१२२।।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥123॥

अन्वयार्थ- सकलदर्शिनः- सर्वज्ञ, अन्तः क्रियाधिकरणम्- सन्यास धारण करने को, तपः फलम्- तप का फल, स्तुवते- कहते हैं, तस्मात्- इसलिये यावद्विभवम्- जब तक शरीर रूप ऐश्वर्य हो अर्थात् यथाशक्ति, समाधिमरणे- समाधिमरण में,

प्रयतितव्यम्- प्रकृष्ट यत्न करना चाहिये।।१२३।।

समाधिमरण करने की विधि

स्नेहं वैरं संगं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः।।124।।
आलोच्यसर्वमेनः कृतकारितानुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम्।।125।।

अन्वयार्थ- स्नेहं- उपकार में प्रीति, वैरं- अनुपकार में द्वेष, संगं- पुत्र स्त्री आदि में ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ इत्यादि बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का, अपहाय- त्याग कर, शुद्धमनाः- निर्मल चित्त होता हुआ, प्रियैः वचनैः- प्रिय वचनों से, स्वजनम्- अपने परिवार, च- और परिजनम् अपि- अन्य आस-पास के जनों से भी, क्षान्त्वा- क्षमा करावे और आप भी, क्षमयेत्- क्षमा करे, निर्व्याजम्- आलोचना के दश दोष रहित, च- और, कृतकारितं अनुमतं- कृतकारित अनुमोदना से सर्व एनः- सभी पापों को, आलोच्य- आलोचंनाकर, आमरणस्थायि- मरणकाल पर्यन्त, निश्शेषं- सम्पूर्ण, महाव्रतम्- महाव्रत को, "आत्मानि"- आत्मा में, आरोपयेत्- स्थापित करे- अर्थात् महाव्रत धारण करे।।१२४-१२५।।

श्रुत अमृत का पान करने की प्रेरणा

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपिहित्वा।।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः।।126।।

अन्वयार्थ- शोकं- इष्ट का वियोग होने पर उसके गुणों का शोक करना, भयं- क्षुधा आदि पीड़ा के कारण इहलोक भय आदि, अवसादं- विषाद-खेद, क्लेदं- कालुष्यं- किसी विषय में रागद्वेष भाव और, अरतिंअपि- अरति को भी, हित्वा- त्याग कर, सत्वोत्साहं- सल्लेखना करने में बल और उत्साह, उदीर्य- प्रकाशित कर, अमृतैः- संसार के दुख और सन्ताप को नाश करने के लिये अमृत समान, श्रुतैः- आगम के वाक्यों से, मनः-मनः को, प्रसाद्यम्- प्रसन्न करना चाहिये।।१२६।।

सल्लेखना करने वाला आहार का क्रम से त्याग करे

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः।।127।।

अन्वयार्थ- क्रमशः- क्रम से, आहारं- कवलाहर को, परिहाप्य- छोड़ कर, दूध व छांछ को, विवर्द्धयेत्- बढ़ावे, च- और, स्निग्धं- दूध छाछ को, हापयित्वा- छोड कर, खरपानं- कांजी और गर्म जल को, पूरयेत्- पीवे।।२७।।

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपिशक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन।।128।।

अन्वयार्थ- खरपान हापनाम् अपि- पानी का भी त्याग, कृत्वा- करके, शक्त्या- शक्ति

के अनुसार, उपवासम् अपि- उपवास भी, कृत्वा- करके, सर्वयत्नेन- व्रत, संयम, चारित्र, ध्यान, आदि में यत्नपूर्वक, पञ्चनमस्कारमनाः- पंचनमस्कार मन्त्र में चित्त लगा कर, तनुः- शरीर को, त्यजेत्- छोड़े।।१२८।।

सल्लेखना के अतिचार

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः।।129।।

अन्वयार्थ- जीवितमरणाशंसै- अधिक जीने की आकांक्षा जल्दी मरने की आकांक्षा, **भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः-** भय क्षुधा प्यास आदि पीड़ा विषयक इहलोक और इस प्रकार के कठिन अनुष्ठान करने से विशेष फल परलोक में होगा या नहीं इत्यादि परलोक भय, बाल्ययुवा अवस्था में मित्रों के साथ खेलने का स्मरण, भावी भोगादिक की आकांक्षा करना, **पंच-** ये पाँच, **जिनेन्द्रैः-** जिनेन्द्र भगवान ने, **सल्लेखनातिचाराः-** सल्लेखना के अतिचार, **समादिष्टाः-** कहे हैं।।१२९।।

सल्लेखना धारण करने का फल

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः।।130।।

अन्वयार्थ- पीतधर्मा- उत्तमक्षमादि रूप धर्म का पान करने वाला, **सर्वैः-** सब, **दुखैः-** शारीरिक, मानसिक दुखों से, **अनालीढः-** सम्बन्ध न रख, **निस्तीरं-** अपार, **दुस्तरं-** कठिनता से किनारे प्राप्त करने योग्य, **अभ्युदयम्-** अहमिन्द्रादि सुख परम्परा रूप, **निःश्रेयसम्-** और निर्वाणमय, **सुखाम्बुनिधिम्-** सुख रूपी जल के समुद्र का, **निःपिबति-** सम्पूर्णतया पान करता है।।१३०।।

सारांश- यह है कि सल्लेखना काल में शान्ति भाव करने से धर्म के श्रवण से सब दुख दूर हो जाते हैं और अहमिन्द्रादि बन कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।।१३०।।

मोक्ष का स्वरूप

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्ध सुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम्।।131।।

अन्वयार्थ- नित्यं- अविनश्वर स्वरूप, **जन्मजरामयमरणैः-** अन्य पर्याय का प्रादुर्भाव, बुढ़ापा, रोग से और मरण से, **शोकैः-** शोक से, **दुःखैः-** दुखों से, **च-** और, **भयैः-** इहलोकादि सात भयों से, **परिमुक्तम्-** रहित, **शुद्धसुखम्-** शुद्ध सुख रूप तथा, **निःश्रेयसम्-** कल्याण स्वरूप, **निर्वाणम्-** निर्वाण, **इष्यते-** कहा जाता है।।१३१।।

विद्यादर्शनशक्ति स्वास्थ्य प्रह्लाद तृप्ति शुद्धियुजः।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्।।132।।

अन्वयार्थ- निरतिशयाः- विद्या आदि की हीनाधिकता रहित, निरवधयः- नियत काल की अवधि रहित **विद्या दर्शन शक्ति स्वास्थ्यं प्रस्लाद तृप्ति शुद्धि युजः**- केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, परम उदासीनता, अनन्त सौख्य, विषयों की अनाकांक्षा, द्रव्य और भाव कर्म रूप मल रहित इनका आत्मा से संबंध करने वाला- इनका भोग करने वाला, निःश्रेयसं- मोक्ष संबंधी, सुखं- सुख में, आवसन्ति- रहते हैं।।१३२।।

मुक्तजीवों के गुणों में विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसम्भ्रांति करणपटुः ।।133।।

अन्वयार्थ- च- और, त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः- तीन लोकों के पलटाने में समर्थ, उत्पातः अपि- उपद्रव भी, यदिस्यात्- अगर हो तो भी, कल्पशते काले- सैकड़ों कल्पकाल के, गतेऽपि- बीतने पर भी, शिवानां- सिद्ध जीवों की विक्रिया- स्वरूप से अन्यथा प्रवृत्ति, न लक्ष्या- नहीं होती है।।१३३।।

मुक्त जीवों की शोभा का वर्णन

निःश्रेयसमाधिपन्नास्त्रैलोक्य शिखामणिश्रियंदधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ।।134।।

अन्वयार्थ- निःश्रेयसम् अधिपन्नाः- मोक्ष प्राप्त करने वाले जीव, निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः- किट्ट और कालिका रहित स्वर्ण की प्रभा के समान प्रकाशमान निर्मल आत्मा के धारक, त्रैलोक्यशिखामणिश्रियम्- तीन लोक की शिखा के मणि की लक्ष्मी को, दधते- धारण करते हैं। अर्थात् मोक्षगत जीव अत्यंत शुद्ध सोने के समान अत्यन्त निर्मल और लोकाग्रभाग- सिद्धशिला में रहते हैं।।१३४।।

सल्लेखना से अभ्युदय फल

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकाम भोग भूयिष्ठैः।
अतिशयित भुवनमद्भुतमभ्युदयम फलति सद्धर्मः ।।135।।

अन्वयार्थ- सद्धर्मः- सल्लेखना के करने से संचित विशेष पुण्य, पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः- प्रतिष्ठा, धन और आज्ञा के ऐश्वर्य सहित, **बल परिजन काम भोग भूयिष्ठैः**- बलपरिजन काम भोग की अधिकता से, अतिशयितभुवनम्- तीन लोक में उत्कृष्ट अद्भुतम्- आश्चर्यजनक, अभ्युदयम्- इन्द्रादि एवं मुक्तिपद स्वरूप फल को, फलति- फलता है।।१३५।।

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने

गुणव्रतवर्णनं नाम षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः ।।6।।

सद्धर्म का अनुष्ठान करने वाले श्रावक की प्रतिमायें

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ।।136।।

अन्वयार्थ- देवैः- तीर्थंकरों ने, श्रावकपदानि- श्रावक की प्रतिमा पद **एकादश**- ग्यारह, **देशितानि**- कहे हैं, **येषु खलु**- जिनमें निश्चय से, **स्वगुणाः**- अपने गुण, **पूर्वगुणैः सह**- पूर्व गुणों के साथ, **क्रमविवृद्धाः**- क्रम से बढ़ते हुए, **सन्तिष्ठन्ते**- रहते हैं। जैसे पाँचवी प्रतिमाधारी को पूर्व चार प्रतिमाओं का पालना अत्यावश्यक होता है।।१३६।।

1 दर्शन प्रतिमा का स्वरूप

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीर भोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरूचरणशरणो दार्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ।।137।।

अन्वयार्थ- संसारशरीरभोगनिर्विण्णः- संसार के स्वरूप, शरीर और इन्द्रिय विषय भोगों से विरक्त, **सम्यग्दर्शनशुद्धः**- अतिचार रहित सम्यग्दृष्टि, पञ्च गुरु चरण शरणः- पंच परमेष्ठी के चरणों की शरण में रहने वाला तथा, **तत्त्वपथगृह्यः**- व्रतों के मार्ग मद्यादि निवृत्तिस्वरूप अष्टमूल गुण का धारण करने वाला, **दार्शनिकः**- दर्शनप्रतिमाधारी है।।१३७।।

2 व्रतप्रतिमाधारी का स्वरूप

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निः शल्यो योऽसौव्रतिनांमतो व्रतिकः ।।138।।

अन्वयार्थ- यः- जो, निःशल्यः- माया आदि शल्यरहित होकर **निरतिक्रमणं**- अतिचार रहित, **अणुव्रत पञ्चकम्**- पाँच अहिंसादि अणुव्रतों को, **अपि**- तथा, शीलसप्तकं च **अपि**- सात शीलों, तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत को भी, **धारयते**- धारण करता है, **असौ**- यह, **व्रतिनों**- व्रतधारियों में, **व्रतिकः**- व्रतप्रतिमाधारी, **मतः**- माना गया है।।१३८।।

3 सामायिक प्रतिमाधारी का स्वरूप

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोग शुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ।।139।।

अन्वयार्थ- चतुरावर्त्तत्रितयः- चारों दिशाओं में तीन तीन आवर्त करने वाला, चतुःप्रणामः- चार शिरोनति नमस्कार सहित, द्विनिषद्यः- पद्मासन अथवा खड्गासन लगा कर, **त्रियोगशुद्धः**- मन, वचन, काय, योग से सावद्य व्यापार रहित, **त्रिसन्ध्यं**

अभिवन्दी- प्रातः मध्याह्न और सांयकाल में सामायिक नमस्कार करने वाला, सामायिकः- सामायिक प्रतिमाधारी है।।१३९।।

4 प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी का स्वरूप

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥140॥

अन्वयार्थ- मासेमासे- प्रत्येक महीने के, चतुर्षुअपि- दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के दिनों में, स्वशक्तिम्- अपनी शक्ति को, अनिगुह्य- न छिपा कर प्रणधिपरः- एकाग्रता से शुभध्यान में लीन, प्रोषधनियमविधायी- प्रोषध का नियम करने वाला, प्रोषधानशनः- प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी कहलाता है।।१४०।।

5 सचित्तत्याग प्रतिमा का स्वरूप

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥141॥

अन्वयार्थ- यः- जो, आमानि- अपक्व, मूलफलशाकशाखाकरीरकन्द प्रसूनबीजानि- मूली, गाजर, फल, शाक, कोंपल, शाखा- खैर या बंसकिरण वगैरह कन्द, मूल और बीज, न अत्ति- नहीं खाता है, सः- वह, दयामूर्तिः- दयास्वरूप है और, अयं- यह सचित्तविरतः- सचित्तत्याग प्रतिमाधारी कहलाता है।।१४१।।

6 रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा का स्वरूप

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥142॥

अन्वयार्थ- यः- जो, सत्त्वेषु- प्राणियों में, अनुकम्पमानमनाः- करुणा सहित हृदय वाला, विभावर्याः- रात्रि में, अन्नं- दाल, भात वगैरह, पानं- पानी, दूध, छाछ, अंगूर वगैरह के रसादि, खाद्यं- मोदक वगैरह और, लेह्यं- रबड़ी आमरस आदि, न अश्नाति- नहीं खाता है, सः- वह, रात्रिभुक्ति विरतः- रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाधारी है।।१४२।।

7 ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥143॥

अन्वयार्थ- यः- जो, मलबीजं- शुक्रशोणित से उत्पन्न, मलयोनिम्- शुक्र शोणित को उत्पन्न करने वाला गलन्मलम्- मूत्र, विष्टा आदि बहाने वाले, पूतिगन्धं- दुर्गन्ध सहित, बीभत्सं- सब तरह देखने वालों अर्थात् सूक्ष्म विचार करने वालों को कि यह माँस पिण्ड है, खून की थैली है, इत्यादि भय उत्पन्न करने वाला अंग- अंग, पश्यन्-

देखता हुआ, अनंगात्- काम सेवन से, विरमति- विरक्त होता है, सः- वह, ब्रह्मचारी है अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी है।।१४३।।

8 आरम्भत्याग प्रतिमा का स्वरूप

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ।।144।।

अन्वयार्थ- यः- जो, प्राणातिपात हेतोः- प्राणों के घात के कारण, सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखात्- सेवा, खेती, व्यापार आदि, आरम्भतः- आरम्भ क्रियाओं से, व्युपारमति- विरक्त होता है, असौ- यह, आरम्भविनिवृत्तः- आरम्भ त्याग प्रतिमा का धारी है।।१४४।।

9 परिग्रहत्याग प्रतिमा का स्वरूप

बाह्येषुदशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ।।145।।

अन्वयार्थ- बाह्येषु- बाह्य, दशसु वस्तुषु- दस प्रकार के परिग्रहों में, ममत्वं उत्सृज्य- मूर्च्छा छोड़कर, निर्ममत्वरतः- निर्मोहत्व में लीन, स्वस्थः- मर्यादा रहित और, सन्तोषपरः- परिग्रह की आकांक्षाओं से निवृत्त होकर, परिचित परिग्रहात्- चारों ओर से, चित्त में स्थित परिग्रह से, विरतः- विरक्त अर्थात् परिग्रहत्याग प्रतिमाधारक कहलाता है।।१४५।।

10 अनुमतित्याग प्रतिमा का स्वरूप

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः समन्तव्यः ।।146।।

अन्वयार्थ- यस्य- जिसकी, आरम्भे- कृष्यादि आरम्भ में, व- अथवा, परिग्रहे- धन धान्यदासीदासादि परिग्रह में, वा- तथा, ऐहिकेषु कर्मसु- लौकिक विवाहादि कार्यों में, वा- और अन्य सांसारिक विषयों में, अनुमतिः- स्वीकारता, न अस्ति- नहीं है, सः- वह, समधीः- रागादि अथवा ममत्वबुद्धि रहित, खलु- निश्चय, अनुमतिः विरतः- अनुमति त्याग प्रतिमा का धारक, मन्तव्यः- मानना चाहिये।।१४६।।

11 उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का स्वरूप

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानिपरिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ।।147।

अन्वयार्थः- गृहतो- घर से, मुनिवन- मुनिवन को, इत्वा- जाकर गुरूपकण्ठे- गुरु के समीप, व्रतानि- व्रत, परिग्रह- ग्रहणकर, तपस्यन्- तप करता हुआ, भैक्ष्याशनः- भिक्षा लेकर भोजन करता है, वह, चेलखण्डधरः- केवल लंगोटी और खण्ड वस्त्र धारण करने वाला, उत्कृष्टः- उत्कृष्ट श्रावक, उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है अर्थात् ऐलक और क्षुल्लक ये दो भेद ग्यारहवीं प्रतिमाधारी होते हैं।।१४७।।

विशेषः- इससे बाह्य तथा आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर मुनिव्रत धारण करना उचित है।।१४७।।

श्रेष्ठ ज्ञाता का स्वरूप

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति।।148।।

अन्वयार्थ- जीवस्य- जीव के, पापं- पाप, अरातिः- शत्रु है, च- और, धर्मः- धर्म, बन्धुः- बन्धु है, इति- इस प्रकार, ध्रुवम्- ही, निश्चिन्वन्- निश्चित विचार करता हुआ, यदि- अगर, समयं- आगम को, जानीते- जानता है वही श्रेयान्- उत्तम ज्ञाता, भवति- होता है।।१४८।।

उपसंहार

येन स्वयं वीतकलंकविद्या दृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम्।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु।।

अन्वयार्थ- येन- जिस भव्य ने, स्वयं- आत्मा को, वीतकलंकविद्यादृष्टि-क्रियारत्नकरण्डभावं- निकल गई हैं, मिथ्यारूपी अविद्या जिसकी ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नों का कोष, नीतः- बना लिया है, तम्- उसे, त्रिषु- तीन, विष्टपेषु- लोक में, पतीच्छया- स्वयम्वर विधान करने की इच्छा से ही मानो सर्वार्थसिद्धिः- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कारण रूप पदार्थों की सिद्धरूप कामिनी, आयातिः- प्राप्त होती है।।१४९।।

ग्रन्थकर्ता की अंतिम कामना

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव-
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः।।150।।

अन्वयार्थ- जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी- तीर्थकरों के चरण कमलों को अवलोकन करने वाली, शुद्ध शीला- पवित्र अर्थात् गुणव्रत, शिक्षाव्रत रूपशीलवाली, सुखभूमिः- सुख को उत्पन्न करने का स्थान स्वरूप, दृष्टिलक्ष्मीः- सम्यग्दर्शनरूप सम्पत्ति कामिनम्- कामी पुरुष को, सुखभूमिः- सुख की भूमि, कामिनी इव- कामिनी के समान, मां सुखयतु- मुझे सुखी करो। तथा, सुतं- पुत्र को, जननी इव- शुद्ध शील माता के समान, मां भुनक्तु- मेरी रक्षा करो और, कुलं- कुल को, गुणभूषा कन्याकाइव- शीलगुण अलंकारभूषित कन्या के समान, संपुनीतात्- पवित्र करो।

सारांश- यह है कि जैसे शील आदि गुण अलंकार युक्त कन्या कुल को

पवित्र करती है, उसी प्रकार मुझे सम्यग्दर्शन रूप लक्ष्मी भी पवित्र करे।।१५०।।

जैसे लक्ष्मी कमल का अवलोकन किया करती हैं, वैसे ही सम्यग्दर्शन रूप लक्ष्मी भी श्री तीर्थंकर भगवान के चरण कमलों का अवलोकन करती हैं अर्थात् तीर्थंकर भगवान सम्यग्दृष्टि होते हैं। सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के पश्चात् सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होने से मुक्ति प्राप्त होती है। यही ध्येय अथवा इष्ट रहता है।।१५०।।

इति श्रीसमन्तभद्रस्वामिविरचिते रत्नकरण्डनाम्नि उपासकाध्ययने एकादशप्रतिमा वर्णनम् नाम सप्तम-परिच्छेदः समाप्त।।7।।

।।समाप्त।।

प. पू. एलाचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निज अवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदय नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग–1
19. योगामृत भाग–2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग–1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग–2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग–1
27. महापुराण भाग–2
28. योगसार–भाग–1
29. योगसार–भाग–2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधना सार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग –1
40. उपासकाध्ययन भाग –2
41. रामचरित्र भाग–1
42. रामचरित्र भाग–2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग–1
45. आराधना कथा कोश भाग–2
46. आराधना कथा कोश भाग–3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग–1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग–2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग–1
55. धर्मामृत भाग–2

56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अमरसेन चरित्र
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग–1
64. पुराण सार संग्रह भाग–2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरल काव्य
75. धर्म संस्कार भाग–1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा–अर्चना
82. नौ–निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर–रोहिणी व्रत
85. तत्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि(जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग–2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती
(महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रयफल प्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति–भाग–2
97. कर्म विपाक
98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शांतिनाथ भक्तामर,
सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1,2,3,4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोजन त्यागः क्यों?
109. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्मः क्या, क्यों, कैसे?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन
113. कल्याणी
114. कलम–पट्टी बुद्धिका

115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज–रोज
117. जागरण
118. सीप को मोती
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डाक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. विद्यानन्द उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
136. मीठे प्रवचन (तीसरा संस्करण)
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. तरंगड़ी
142. सफलता के सूत्र
143. पार्श्वनाथ पुराण
144. यशोधर चरित्र
145. जीवन का सहारा
146. भक्ति भागीरथी
147. ऐसे होगें कामयाब
148. गुण रत्नाकर
149. खुशी के आँसू
150. धर्म की महिमा
151. सती मनोरमा
152. समाधि सार
153. तत्वसारो विचारो
154. जिनकल्पिसूत्रत
155. दुःखों से मुक्ति
156. णमोकार महारचना
157. भक्ति से मुक्ति की ओर
158. सुख का सागर (चौबीसचालीसा)
159. आज का निर्णय
160. गुरु कृपा
161. धर्म का मर्म
162. अनंतमती
163. कुछ कलियाँ कुछ फूल

प्रेस में:–

गुरुवर तेरा साथ
स्वंभूस्त्रोत
पंचविशातिका
तत्वज्ञान प्रवचन
जिन श्रमण भारती (द्वितीय संस्करण)
कलम–पट्टी बुद्धिका (द्वितीय संस्करण)
धर्मबोध भाग–1,2,3,4 (द्वितीय संस्करण)
डॉक्टरों से मुक्ति (द्वितीय संस्करण)
कल्याणी (द्वितीय संस्करण)
चैन की जिन्दगी (द्वितीय संस्करण)
अक्षरातीत अक्षर (द्वितीय संस्करण)
स्वप्न विचार (द्वितीय संस्करण)
आ जाओ प्रकृति की गोद में (द्वितीय संस्करण)
हीरों का खजाना (द्वितीय संस्करण)

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय मासिक पत्रिका
सभी प्रमुख बुक स्टालों पर
उपलब्ध